वनौषधि विशेषांक (चतुर्थ भाग) की विषयानुक्रमणिका

नकछिंकनी	1
नरकचूर	3
नरकट नल नं0 1	4
नरकट नल (नरसल) नं0 2	5
नरगिस	6
नरवेल	8
नाखूना	8
नागकेशर (पीला)	9
नागकेशर (लाल)	12
नागदमनी नं0 1	13
नागदमनी नं0 2	16
नागदौना (नागदमनी नं0 3)	18
नागरमोथा	19
नाड़ीशाक	24
नारंगी (संतरा)	25
नारियल	30
नासपाती	37
नाहरू बूटी	39
निर्गुण्डी	40
निगुण्डी काली या नीली	48
निर्मली	49
निर्विष	51
निसोथ	51
नीबू (कागजी)	58
नीबू बिजौरा	71
नीबू जम्बीरी	76
नीबू मीठा	78
नीबू जंगली	79
नीम	80
नीम (महा) बकायन	107
नीम मीठा	111
नील	112
नील जंगली	115
नील कंठी	117
नीलवृक्ष	118
नुकाचीनी	118
नेत्रबाला (सुगन्धबाला)	118
नेपारी	120
नेपाल टुन्थ	120
नेर	120
पँवाड	121
पाषाण भेद नं0 1	125
पाखान भेद नं0 2	126
पाखान भेद नं0 3	127
पाखान भेद नं0 4	129
पाखान भेद नं0 5	129
पाखान भेद नं0 6	129
पटपनस (कटहल)	129
पटुआघास	130
पतकारू	130
पतंग	130
पत्थर फोडी	132
पद्माख	132
पनडी	134
पपीता	135
परंजब	137
परवल	137
पर्णबीज	141
पर्वती	144
पहाड़ी गंदना	145
पहाड़ी पीपल	146
पहाड़ी सीसम	147
पाकर	147
पाखुर	149
पाढ़ (पाठा)	150
पाढ़ल (रक्त)	155
पाढ़ल (श्वेत)	156
पातल गारुडी	158
पाताल तुम्बी	160
पाती	161
पानजीरा पात	162
पानलता	162
पानी आंवला	163
पानी बेल	164
पापरी	164
पापरी नं0 2	165
पापरी नं0 3	166
पामुख	166
पारस पीपल	167
पालक	168
पालक जंगली	170
पाला	171
पालोर	171
पिचकी (पिसा)	172
पिठवन नं0 1	172
पिठवन नं0 2	173

पिण्डार	174
पिण्डालू	175
पिण्डीतक	176
पिण्डी	177
पित्त पापड़ा नं0 1	177
पित्त पापड़ा नं0 2	181
पित्त पापड़ा नं0 3 (दमन पापड़ा)	182
पित्त पापड़ा नं0 4	183
पित्त पापड़ा नं0 5 (पूना का)	183
पित्त पापड़ा नं0 6	184
पित्ति	185
पिपरमिण्ट	185
पिप्पली	187
पियारांगा (ममीरी)	201
पिस्ता	203
पवित्र पीपल वृक्ष	205
पीपल–पाकर (गया अश्वत्थ)	216
पीला बरियार	216
पीली	217
पीली कपास	217
पीली करबीर	218
पीलु छोटा	218
पीलु बड़ा	221
पीलो आगियो	222
पुण्डरिया (पुण्डरीक)	222
पुदीना	223
पुनर्नवा (लाल)	228
पुनर्नवा (श्वेत)	235
पुलिचन	244
पुलंग	244
पूली	244
पेंटगुल	245
पेच	245
पेडी ठगारा	245
पोई	246
पोनवार	247
पोशुर	248
पोहकर मूल	248
प्याज	252
प्रियंगु (फूल प्रियंगु)	263
प्रेम पुष्पी	269
फंजियून	271
फंजी	271
फनस लम्बे	272
फरहद	272
फरास	275
फरीदबूटी	276
फलदू	277
फलिद्धर	277
फांगला	277
फाफरा	278
फालसा	279
फिंदक	282
फितरा सालियून	282
फूट	283
फाग (फोगला)	283
फ्रास्ट	284
बन्दर रोटी	284
बंदाल	285
बकपुष्पी	292
बच नं0 1	293
बच (श्वेत) नं0 2	302
बच सुगन्धा (चन्द्रमूला)	303
बचो	304
बछनाग (काला)	304
बछनाग (श्वेत या दूधिया)	314
बजरठ	315
बट्ठल	316
बटवासी	316
बटसिंजल	316
बड़हर	316
बथुआ	317
बथुआ (विदेशी)	321
बदरजरी धामुन	322
बधारा	322
बन उड़द	322
बन काकड़ा	323
बन कांगनी	324
बनकाहू	324
बनखोर	325
बन गोखरू	325
बन चांद	325
बन गोभी	326
बन चालिता	326
बनफ्सा	327
बनमूंग	333
बन मैथी	333
बन लौंग	335
बनापू	335
बबूल	336
बिलायती बबूल	347
बरगद	348

नकछिंकनी (Centipeda Orbicularis)

गुडूच्यादि वर्ग एवं भृंगराजकुल (Compositae) के इस वर्षायु 4–8 इंच लम्बे, छत्ताकार क्षुप के काण्ड बहु शाखा–प्रशाखा युक्त, रोमश, भूमि पर फैले हुए, पत्र–गाजर के पत्र जैसे किन्तु बहुत छोटे, $\frac{1}{6}$ -½ इंच लम्बे, दन्तुर, बृन्तरहित, मदुरोमश, पुष्प–कक्षीय या शाखाओं की संधियों से निकलने हुए नन्हें–नन्हें घुण्डीदार गुच्छों में बहुत छोटे–छोटे (प्रत्येक गुच्छ में 10–12) पीत या श्वेत वर्ण के होते हैं। फल छोटे–छोटे तथा बीज–ज़ंगली तुलसी के बीज जैसे होते हैं।

ये क्षुप मैदानों, तालावों, नदी नालों की समतल भूमि पर शीत ऋतु के अन्त में प्रायः समस्त भारत में (बंगाल में अधिक) एवं सीलोन में भी पाये जाते हैं।

नोट (नं0 1)– एक नकछिकनी अर्ककुल (Asclepiadeae) की होती है। इसे मधुमालती, मरेठी में दोधी, तितकुंगा, व लेटिन में ड्रेजीह्योलोविलिस (Dregea Volubilis) कहते हैं। इसके क्षुप प्रस्तुत छिकनी के क्षुपों की अपेक्षा बड़े एवं ऊँचे, तथा पुष्पों के घुण्डीदार गुच्छे या डोड़े बड़े होते हैं। यह विशेष तिक्त या तीक्ष्ण नहीं होता। इसे मीठी–नकछिकनी भी कहते हैं। इसमें ग्लुकोसाईड (फल शर्करा), ड्रेजीन (Dregein) नामक एक तत्व तथा कुछ क्षाराभ (अल्कोलायड) पाया जाता है। यह कफ निःसारक है तथा नेत्रविकारों में और सर्पदंश पर उपयोगी है। –नाडकर्णी

नं0 2– चरक के शिरोविरेचनोपग (एवं शिरो रोग) और कटुस्कन्ध में तथा सुश्रुत के मुस्तादि गणों में इसका उल्लेख है।

नाम :

सं0–क्षवक (छींक लाने वाली), छिक्कनी, छिक्किका, तीक्ष्णा, घ्राणदुःखदा (तीक्ष्णता से नाक में क्षोभकारक) आदि। हि0–नकछिकनी, छिकनी। मं0–नाक शिंकणी, भूताकेशी। गु0–नाक छींकणी। बं0–मेचेता, हाचुति, छिकनी। अं0–स्नीझवीड़ (Sneeze weed), ले0–सेंटीपीड़ा, आर्बिक्युलारिस, मायरिओगिनी मिनुटा (Myriogyne Minuta)।

रासायनिक संघटन :

इसमें एक उड़नशील तैल एवं तिक्त सत्व मायरियो–गिनिन (Myriogynin) के अतिरिक्त एक क्षाराभ, अत्यल्प सपोनिन और एक ग्लुकोसाईड पाया जाता है।

प्रयोज्यांग : पत्र, बीज तथा पंचांग।

गुण धर्म व प्रयोग :

लघु, तीक्ष्ण, रूक्ष, कटु, कषाय, कटु–विपाक, उष्ण वीर्य, कफ वात शामक, रोचक, दीपन, पित्तकर, उग्रगन्धी, लेखन, रक्तप्रसादन, बाजीकरण, नाड़ी दौर्बल्य, कास, श्वास, हिक्का, वातरक्त, पक्षाघात, अरुचि, अग्निमांद्य, कृमि, प्लीहावृद्धि, रक्तविकार, श्वेतकुष्ठ, ग्रहपीड़ा, भूतवाधा, दृष्टिविकार, नपुंसकता आदि में प्रयुक्त होता है।

पत्र–वामक, कफनिःसारक, विरेचक हैं। पत्र और फूलों को मसलकर सूंघने से छींकें आती हैं, हिक्का बन्द होती है। बीज–'कृमिघ्न हैं।

पत्र एवं पंचांग का लेप–कुष्ठघ्न, वेदानास्थापक एवं नस्य शिरोविरेचन है।

नकछिंकनी

(Centipeda Orbicularis Lour)

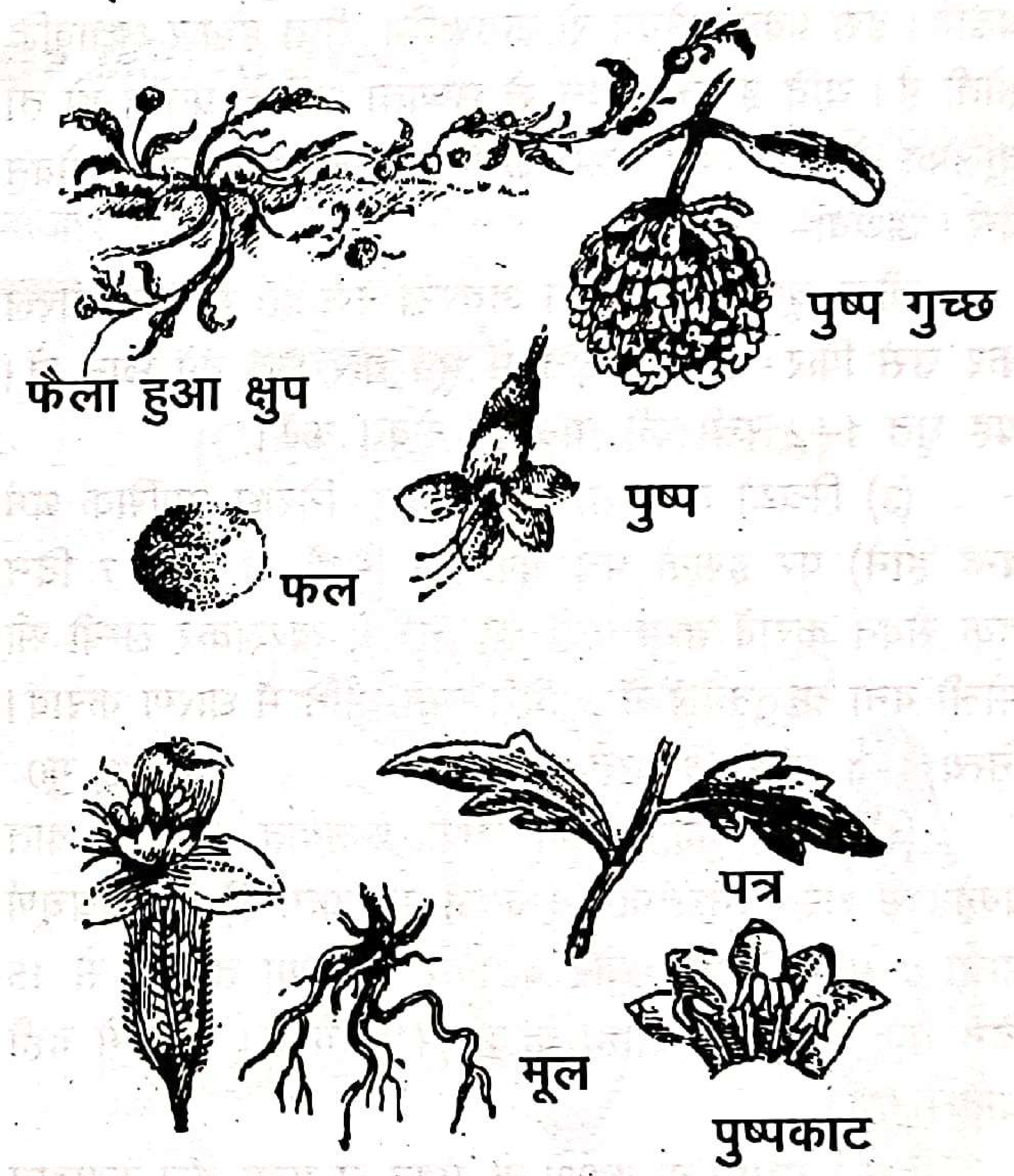

(1) प्रतिश्याय, पीनस, शिरःशूल, अर्धावभेदक तथा सिर के भारीपन में इसके स्वरस, चूर्ण या फूल की घुण्डी को मसलकर नसवार नस्य देने से खूब छींकें आकर प्रतिश्याय (जुकाम) खुल जाता है, सर दर्द दूर होता तथा पीनस के कृमि नष्ट हो छीकों के साथ निकल जाते हैं एवं बदबू दूर होती है, गन्दा पानी निकल जाता है। यदि इस नस्य से नासिका में विशेष तीव्र क्षोभ हो तो नासिका में घृत डालना चाहिए।

यदि जुखाम या नजला विशेष तीव्र हो या चिरकारी हो तो इसका चूर्ण 25 माशा, समुद्रफल 12 नग, लौंग 25 नग तथा कस्तूरी 1 रत्ती, सबके चूर्ण को अदरख के रस में खरलकर छाया शुष्क कर रक्खें। इसे किंचित दिन में 2–3

बार सूंघने से शीघ्र 2–4 दिन में ही लाभ होता है।
—यूनानी

बंगाल की ओर अहोवा नामक एक नासिका रोग होता है जिसमें नाक के भीतर एक फुंसी सी निकलती है तथा साथ ही तीव्र ज्वर आता है। यदि शीघ्र चिकित्सा न हो तो रोगी की मृत्यु होती है। इस पर इसके बीज या छायाशुष्क पत्र चूर्ण के साथ समभाग पीपलामूल (प्रत्येक 2–2 माशा) और कस्तूरी ½ रत्ती सबको महीन खरल कर थोड़ा–थोड़ा सूंघने से लाभ होता है। —ब0 चं0

(2) अग्निमांद्य पर–विशेषतः शीतकाल में इसके बीजों के चूर्ण की मात्रा प्रथम कुछ दिन 4–4 रत्ती, गुड़ में मिलाकर सेवन करें, फिर 1–1 रत्ती बढ़ाते हुए 1 माशा तक बढ़ावें। इस प्रकार सेवन से जठराग्नि दीप्त होकर क्षुधावृद्धि होती है। यदि इसके सेवन से उष्णता अधिक प्रतीत हो तो कुलफा के बीज और मिश्री के फाण्ट के साथ इसका सेवन करें। अथवा–

बीज चूर्ण 4 भाग को अदरख रस 10 भाग में खरल कर उसे फिर 10 भाग घृत में भून कर घृत को छान लें। यह घृत 1–2 रत्ती की मात्रा में सेवन करें।

(3) स्त्रियों के असामयिक ऋतु–निरोध (मासिक धर्म बन्द होने) पर इसके पत्र चूर्ण को मिश्री के साथ 7 दिन तक सेवन करावें तथा पत्रों को तैल में खरलकर लम्बी सी गोली बना ऋतुकाल में 3 दिन तक योनि में धारण करावें। नित्य 1–1 गोली बदलते रहें। ब0 गु0

(4) प्लीहावृद्धि, गुल्म तथा रूक्षवात (जिसमें वात प्रकोप से शरीर निस्तेज एवं रूखा हो जाता है) पर–पत्रचूर्ण मात्रा 1 मा0 से धीरे–धीरे बढ़ाकर 3 माशा तक 7 से 15 दिन तक सेवन से प्लीहा वृद्धि दूर होती है। पथ्य में दही चावल देवें।

इसके पंचांग के क्वाथ के सेवन से गुल्म और रूक्षवात में लाभ होता है। —व0 गु0

नाभी टल गई हो, (धरण चली गई हो) तो इसका चूर्ण 1 माशा लेकर गुड़ में मिला प्रातः सायं कुछ दिन लेने से लाभ होता है।

(5) योषापस्मार (हिस्टीरिया) पर तथा गर्भपातार्थ–यदि अपस्मार के शीघ्र–शीघ्र, बार–बार दौरे होते हों तो इसके छायाशुष्क पंचांग का चूर्ण 1–1 रत्ती, 20 तोला दूध के साथ 1 या 2 बार पिलाने से 2–3 मात्रा में दौरे रुक जाते हैं।

गर्भपातार्थ–इसे पीसकर शहद मिला गर्भवती की नाभी पर लेप करने से गर्भ गिर जाता है। —धन्वन्तरि

(6) उदर–कृमिनाशार्थ–इसका चूर्ण 4 रत्ती गुड़ में मिलाकर खाने से कीड़े मर जाते हैं फिर 2–3 तोला एरण्ड तैल दूध के साथ पीने से मृत–कृमि निकल जाते हैं।

नाभी टल जाने पर–इसके 1 माशा चूर्ण को गुड़ के साथ खाने से नाभी अपने स्थान पर आ जाती है।
—धन्वन्तरि

(7) नेत्रविकार–नेत्राभिष्यन्द पर–इसके पंचांग के फाण्ट से प्रक्षालन करते रहने से विशेष लाभ होता है।

रतौंधी पर–इसके स्वरस में पिप्पली घिसकर नेत्रों में आंजने से 1–2 दिन में ही लाभ हो जाता है। व0 गु0

(8) दाद, खुजली आदि चर्म रोगों पर–इसे पानी के साथ पीसकर लेप करते हैं। अथवा–इसे तैल में जलाकर, तैल को छानकर लगाते हैं। इससे श्वेत कुष्ठ में भी लाभ होता है।

(9) दन्तशूल पर–दांत या दाढ़ में दर्द हो तथा मसूढ़े सूज गये हों तो इसे सोंठ के साथ पीसकर गरमकर कपोल पर मोटा–मोटा लेप लगा देने से आराम हो जाता है।
—धन्वन्तरि

इसके पत्तों को पीस छोटी गोली बना दांतों के बीच दवा लेने से भी लाभ होता है।

नोट–मात्रा 4 रत्ती से 1 माशा या अधिक से अधिक 3 माशा तक। इसके अत्यधिक सेवन से यकृत पीड़ा तथा फुफ्फुसों को हानि पहुंचती है। अधिक सूंघने से छीकें अत्यधिक आती हैं, घबड़ाहट होती तथा मूर्छा भी आ जाती है। इन विकारों के निवारणार्थ गव्य–घृत तथा कतीरे का सेवन कराते हैं। इसके प्रतिनिधि सन के बीज हैं।

विशिष्ट योग :

(1) तैल नकछिंकनी–इसे 1 सेर लेकर महीन पीस उसमें 1 पाव तिल तैल मिला, खरल कर गोलियां बना, पाताल यंत्र द्वारा तैल निकाल लें। इसे 4 रत्ती की मात्रा में, पान में लगाकर खाने से हाजमा बढ़ता है तथा बाजीकरण है। —धन्वन्तरि

(2) माजूम नकछिकनी–इसे 1 सेर लेकर 5 सेर दूध में पकाकर खोया बना लें। फिर उसे ½ सेर गोघृत में भूनकर 1 सेर खाण्ड तथा 1 सेर शहद की चाशनी में मिला दें। दालचीनी, कबाबचीनी, पान की जड़ या कुलंजन और लौंग 3–3 माशा तथा कस्तूरी 1 माशा महीन पीस पाक में मिला दें। मात्रा–6 माशा गौदुग्ध के साथ सेवन करें। यह वीर्यवर्धक, बाजीकर है। प्रमेह व शीघ्रपतन में विशेष लाभकारी है।
—यूनानी चिकित्सा सागर

(3) ताम्रभस्म–1 तोला शुद्ध ताम्र के छोटे–छोटे टुकड़े कर 1 पाव नकछिकनी की लुगदी में रख शराव सम्पुट कर 10 सेर उपलों में फूंक दें। इस प्रकार 7 बार फूंकने से काले रंग की भस्म तैयार होती है। मात्रा ½ रत्ती। भूख और बल

को बढ़ाती है, शूलघ्न है। सन्निपात, प्रसूत रोगों में अद्वितीय है। यह नेत्र रोगों में भी लाभकारी है। इसे सुरमे की तरह लगाते हैं। –धन्वन्तरि व सचित्रायुर्वेद

(4) तालभस्म–शुद्ध हरताल तबकिया 1 तोला को इसके रस में 3 दिन घोटकर टिकिया बना लें। सूख जाने पर इसके पंचांग के 1 पाव कल्क में रख (शराव संपुट कर) कपड़ मिट्टी कर 5 सेर कण्डों में फूंक दें। श्वेत भस्म होगी। मात्रा–1 रत्ती। यह उत्तम रक्तशुद्धिकारक है।

(5) फौलाद भस्म–शुद्ध फौलाद के बुरादे को चीनी मिट्टी के प्याले में डाल, उसमें इसका रस इतना डालें कि 1 अंगुल बुरादे के ऊपर रहे। 40 दिन बाद निकाल कर उसे इसके तथा खट्टे अनारदानों के रस में 7 दिन खरल कर टिकिया बना सम्पुट कर 10 सेर कण्डों में फूंक दें। फिर इसके रस में 3 दिन खरल कर गजपुट दें। ऐसी 7 आंच देने पर नसवारी रंग की उत्तम भस्म होगी। मात्रा 1 से 4 रत्ती। यह रक्तवर्धक और पांडुनाशक है।

–वैद्याचार्य उदय लाल जी महात्मा।

नकुलकन्द देखो–सर्पगन्धा। रक्तरस देखो–खूबकलां। नगंधबावरी देखो–तुलसी बुबई में। नदी जम्बू देखो–जामुन में। नयनतारा देखो–मांसार्बुद की बूटी। नन्दीवृक्ष––पीपल वृक्ष पहाड़ी।

नरकचूर (Zingiber Zerumbet)

हरीतक्यादि वर्ग एवं हरिद्रा कुल (Scitaminaceae) का इसका पौधा ईख जैसा 5–6 फुट ऊँचा व ½ इंच व्यास का गोल, पत्र– 10–12 इंच लम्बे, 2–3 इंच चौड़े, नरसल के पत्र जैसे, किंचित् अण्डाकार अनीदार निम्न भाग सूक्ष्म रोमश; पुष्प–12–18 इंच तक लम्बी सीकों पर, फीके हरित वर्ण के, अग्रभाग में किंचित् काले रंग के; फल– 1 इंच लम्बे अण्डाकार; बीज–छोटे कुछ गोल, काले रंग के होते हैं। इसके मूल के नीचे बहुत कड़ा रेशेदार, कुछ फीके पीले रंग के किंचित् लालिमायुक्त कन्द होते हैं। इसे ही नरकचूर कहते हैं। ये कचूर की अपेक्षा मोटे व लम्बे होते हैं।

महाभरीवच (नरकचूर)
(Zingiber Zerumbet Smith.)

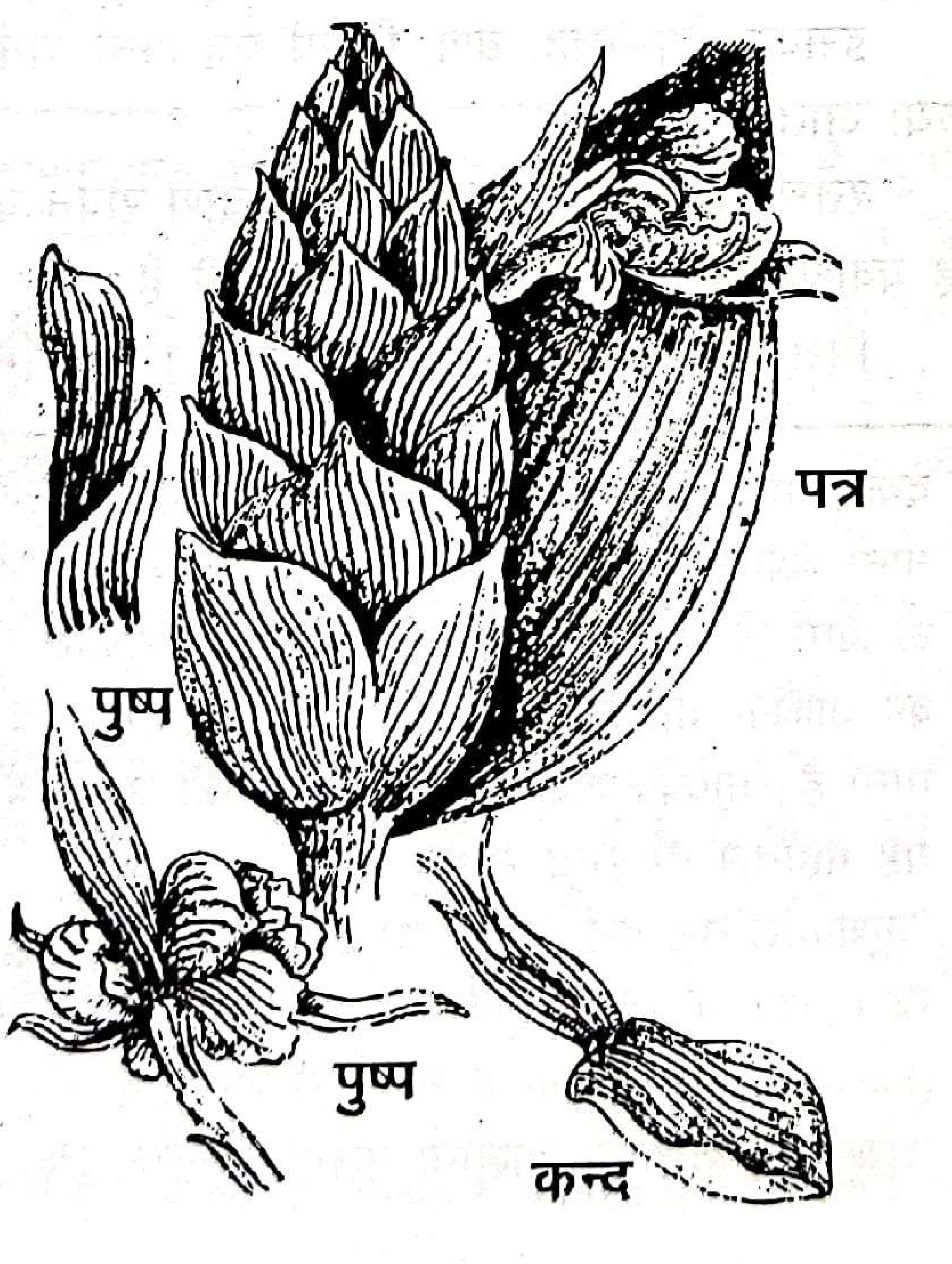

उक्त कन्द को निकालकर, टुकड़े कर तथा शुष्ककर बाजार में बेचते हैं। ये टुकड़े गंध में सोंठ की गंध जैसे स्वाद में कुछ कडुवे होते हैं।

कालीहल्दी (नरकचूर)
(Curcuma caesia Roxb.)

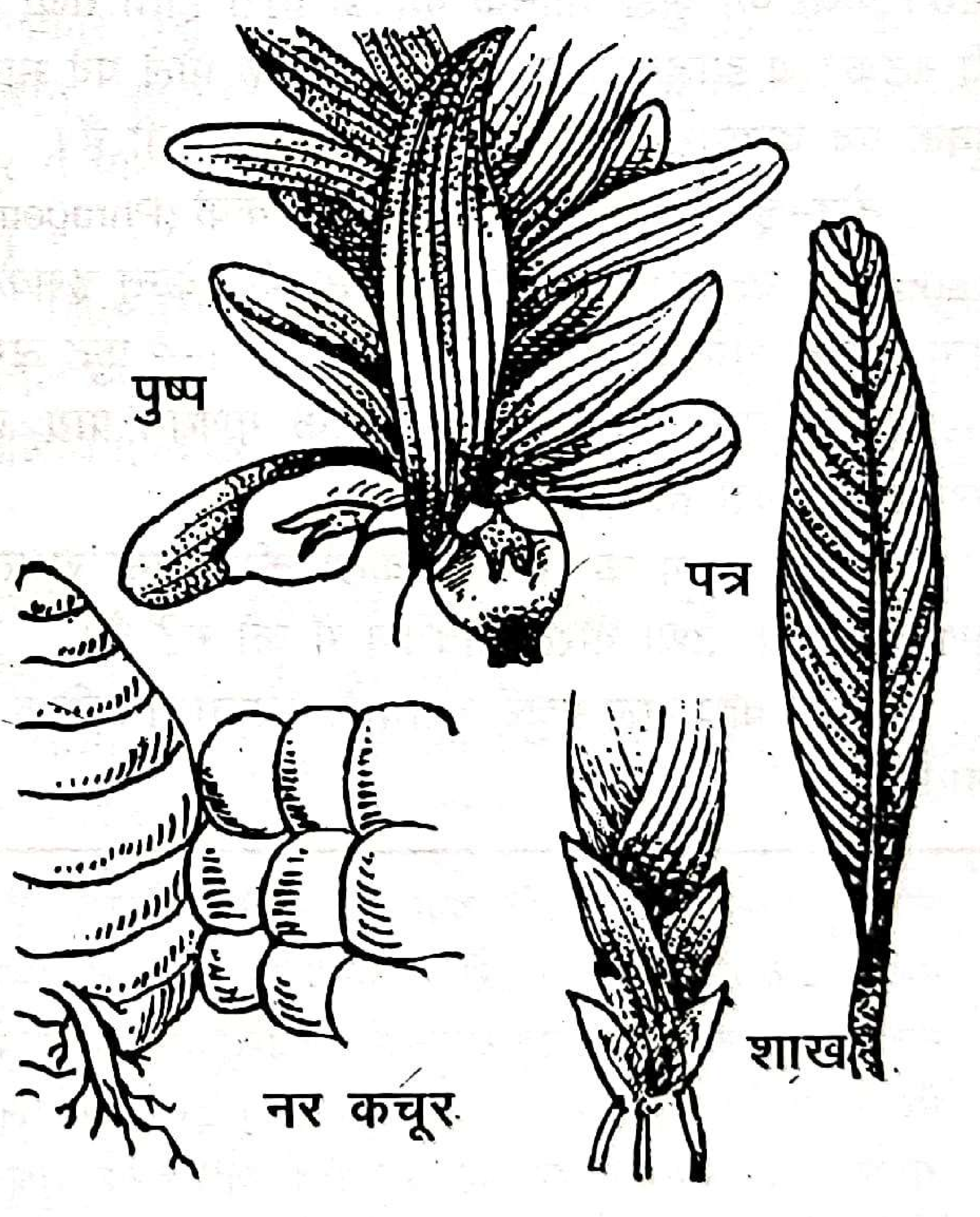

नोट– कई लोग कचूर को ही नरकचूर मानते हैं। ध्यान रहे यह कचूर की ही एक बड़ी जाति है। भावप्रकाश कार ने इसे कुलिंजन का एक भेद महाभरीबच माना है। हमें भी इसे महाभरीबच मानने में कोई विशेष आपत्ति नहीं है। यथा–स्थान बच का प्रकरण देखें।

नाम :

सं0–अवंती, कर्पूर हरिद्रा। हि0–नरकचूर, महाभरीबच, कालीहल्दी। म0–काली हलद, नरकचोरा। गु0–काली हलद, नरकचोरा। बं0–महाभरीबच, नीलकंठ, कालहरिद्रा। ले0–जिंजिबर झेरवेट, कक्युंमा सिसिया (Curcuma caesia)।

यह भारत के अनेक प्रान्तों में नैसर्गिक पैदा होती है। बंगाल के जंगलों में होता है, तथा बागों में लगाया जाता है।

गुणधर्म व प्रयोग :

सुगंधित, कफ कासनाशक, स्वरशोधक, रोचक, हृद्य, कंठ एवं मुख शुद्धिकारक है। कास, श्वास, कृमि, कुष्ठादि अन्य चर्मरोगों में इसका व्यवहार किया जाता है। इसके गुणधर्म व प्रयोग प्रायः सोंठ, कचूर या हल्दी जैसे ही हैं। बच की अपेक्षा यह हीन गुणवाला है। इसे प्रायः जंगली सोंठ भी कहते हैं। ताजे नरकचूर का उपयोग हल्दी के समान ही किया जाता है। आघात, चोट, कुचलना या भीतरी घाव से होने वाले तैसे कि सन्धिवात जन्य वेदना पर इसका गरम प्रलेप लाभप्रद होता है। कास, श्वासादि फुफ्फुस सम्बन्धी विकारों पर इसे पानी में उबालकर सेवन कराते हैं। बाल–शोष (सूखा रोग) पर इसका चूर्ण 2–3 रत्ती, दूध के साथ प्रातःसायं देते हैं। बालकों को हरे दस्त होते हों तो इसे ½ से 1 रत्ती तक माँ के दूध में घिसकर या सुखोष्ण जल के साथ पिलावें।

नरकट नल नं0 1 (Arundo Donax)[1]

गुडूच्यादि वर्ग एवं यवकुल (Graminaceae) के इस 6 से 12 फुट ऊँचे, बांस जैसे किन्तु छोटे पतले पौधों के काण्ड के पर्व पीताभ, भीतर से पोले; पत्र–बांसपत्र जैसे किन्तु छोटे, पतले, पुष्प–व्यूह की छोटी–छोटी धूसर वर्ण की सलाकायें होती हैं। इसके बीजकोष और बीज नहीं होते। पौधों की वृद्धि भौमिक काण्डों द्वारा होती तथा शीघ्र ही बढ़कर ये झाड़दार हो जाते हैं। इसके पोले पर्व भाग से हुक्के एवं वाद्ययन्त्रों की नलिकायें बनाई जाती हैं।

नोट–इसका एक भेद फ्रेग्माइटिस कर्क (Phragemites Karka) है। यह स्वरूप में उक्त जैसा ही, किन्तु इसके पर्व भाग उसकी अपेक्षा छोटे, पत्र–सीधे, कड़े, 1–2 फुट लम्बे व 1–1½ इंच तक चौड़े होते हैं। इसके गुणधर्म प्रायः उक्त नरकट के जैसे ही हैं।

प्रस्तुत प्रसंग के नल (नरकट) की गणना सुश्रुत के तृणपंचमूल में[2] तथा वीरतृणादिगण में की गई है।

इसके पौधे जल प्रचुर, दलदली स्थानों में अधिक पाये जाते हैं।

नाम :

सं0–नल,, पोटगल, शून्यमध्य (पोला होने से), धमन (पोली काण्डों की नलिकायें, फुकनियाँ बनाते हैं)। हि0–नरकट, नरसल। म0–नल। गु0–नाली, नड़येल। बं0–नल। ले0–अरुण्डो डोनेक्स, अं0–कार्का (Arundokarka)।

प्रयोज्य अंग–मूल।

गुणधर्म व प्रयोग :

लघु, स्निग्ध, मधुर, कषाय, तिक्त, मधुर–विपाक, शीतवीर्य, त्रिदोषहर–विशेषतः वातपित्त शामक, रक्त शोधक, दाहप्रशमन, ब्रणरोपण, स्तन्यजनन, वृष्य, मूत्रल है तथा रक्तपित्त, अन्य रक्तविकार, मूत्रकृच्छ, बस्तिशोथ, दाह आदि में प्रयुक्त होता है।

इसका लेप–दाह, ब्रण, बिसर्प एवं अन्य चर्मरोगों पर किया जाता है।

स्तन्य वृद्धि के लिए–मूल का क्वाथ सेवन कराते हैं। यह क्वाथ शुक्र दौर्बल्य में भी लाभकारी है।

विसर्प पर–जड़ को महीन पीसकर घृत मिला, लेप

1. निघण्टु ग्रन्थों में नल विषयक जो संक्षिप्त विवरण है वह भ्रमोत्पादक है। किसी ने इसे शीतवीर्य तो किसी ने उष्णवीर्य माना है। राज निघण्टु एवं धन्वन्तरि निघण्टुकारों ने इसके दो भेद किये हैं। (1) नल और (2) महानल। इसमें से नल को शीतवीर्य एवं रक्तपित्तहर कहा है। अतः यही चरक सुश्रुतादि के पित्तविकार, विसर्प, मूत्रविकारादि के प्रयोग में आया हुआ नल होना चाहिये। इसके साथ कुश, दर्भ, ईख मूलादि पंचतृणों की योजना भी उन प्रयोगों में कहीं–कहीं पाई जाती है। ये द्रव्य पित्तशामक तथा मूत्रल हैं। अतः प्राचीन ग्रन्थोक्त नल उन्हीं के तृण या यवकुल का होना चाहिये। हम प्रथम इसी नल (नरकट) को नल नं0 1 के नाम से प्रस्तुत प्रकरण में देकर, पश्चात् डॉ0 म्हसकर आदि कुछ आधुनिक विद्वानों का माना हुआ नल (नरसल) या महानल का विस्तृत वर्णन नं0 2 के आगे के प्रकरण में देते हैं। उक्त निघंटुकारों ने महानल को अधिक वीर्यशाली, रसक्रिया में उपयोगी एवं उष्णवीर्य माना है। भावप्रकाशकार ने जिस नल को उष्णवीर्य माना है। यह महानल ही होना सम्भव है।
2. "कुशकास नल दर्भ काण्डेक्षुका इति तृणसंज्ञक"–सु0 सू0 अ0 38। चरक के तृणपंचमूल में कुश, नल व काण्डेक्षुक (खागड (Saccharum Fuscum) के स्थान में शर, ईक्षु और शाली हैं। 'शरेक्षु दर्भ काशानां शालीनां मूलमेव च–(च0 चि0 अ0 1)

करने से लाभ होता है। —ग0 नि0

ज्वर पर—इसकी जड़, बेत की जड़, मूर्वा और देवदारू का क्वाथ ज्वरनाशक है। —ग0 नि0

मूत्राघात पर—नल, कुश, कांस और ईख इन चारों की जड़ के क्वाथ को ठण्डा कर, उसमें (क्वाथ का आठवां भाग) मिश्री मिलाकर प्रातः पिलाने से वेदनायुक्त मूत्राघात अवश्य नष्ट हो जाता है। —यो0 र0

भैषज्य रत्नावली में इसके मूल पाठ के अन्त में—'इत्युवाचवैचरक:' (चरक ने ऐसा कहा है) ऐसा लिखकर इस प्रयोग को और भी प्रमाणित कर दिया है।

नोट—मात्रा—क्वाथ 5—10 तोला तक।

इसका जो दूसरा भेद ऊपर दर्शाया गया है। इसके मूल का क्वाथ स्नेहन, आर्त्तवजनन तथा स्तन्य को कम करने वाला है। इसमें ग्रेमाइन (Gramine) तथा डोनेक्सेराइन (Donaxarine) नामक दो क्षाराभ (अल्कलाईड) पाये जाते हैं।[1]

नरकट नल (नरसल) नं० 2 (Lobelia Nicotianfolia)

इस लुदुत (पंजाबी) कुल[2] या बन तमाखू कुल (Eampaunlaceae) के द्विवर्षायु 5 से 12 फुट ऊँचे क्षुप के काण्ड के अग्र भाग का पोला भाग बहु शाखा युक्त एवं लगभग 1 फुट लम्बे श्वेत तुर्रे से युक्त होता है।पत्र—तमाखू के पत्र जैसे संख्या में बहुत। हल्के हरे रंग के साधारणतः 2—10 इंच लम्बे छोटे वृन्त से युक्त; नीचे के कोई पत्र 1½ फुट तक लम्बे, 2 इंच चौड़े तथा ऊपर के क्रमशः छोटे, भालाकार तीक्ष्ण नोकदार महीन दांतों से युक्त एवं मृदुरोमश; पुष्प—नीलाभ श्वेतवर्ण के, 1 फुट तक लम्बी मंजरियों में आते हैं। पुष्प दंड पर एक गाढ़ा, पीतवर्ण का स्राव जमा हुआ पाया जाता है। इसकी डाली तोड़ने से दूध जैसा स्राव निकलता है।

फल—द्विकोष्ठीय, फूले हुए गोल, छोटे-छोटे 5—9 मि0 मि0 व्यास के सूखने पर तड़क जाने वाले; बीज—अण्डाकार, बहुत छोटे, पीताभ भूरे रंग के स्वाद में अति चरपरे होते हैं।

इस क्षुप के ऊपरी भाग को पत्र सहित, अक्टूबर तथा नवम्बर मासों में तोड़कर छाया शुष्क कर औषधि कर्मार्थ उपयोग में लाते हैं इसके सूखे हुए पौधे पर राल जैसा एक पदार्थ लगा रहता है। जो स्वाद में उष्ण एवं चरपरा होता है। इसकी धूल से तमाखू की तरह नाक तथा गले में क्षोभ होता है। इसकी पोली नली से बंसी बनाई जाती है। जिसे कोकण में पावा कहते हैं। (श्री गंगा सहाय जी पांडेय के भा0 प्र0 निघण्टु से साभार)।

इसके क्षुप दक्षिण भारत के पश्चिमी घाट में बम्बई से त्रावणकोर तक 2—7 हजार फुट की ऊँचाई पर कोकण, माथेरान, महाराष्ट्र के दक्षिण प्रदेश, नीलगिरी, मलावार, मैसूर में पाये जाते हैं।

नाम :

हि0—नल, नरसल। म0—देवनल, बोकेनल, नल। बं0—बड़ानल। गु0—नाली। अं0—वाइल्ड टोबको (Wild tobacco), लोबेलिया (Lobelia)। ले0—लोवोलिया निकोर्टि आनिफोलिया।

---

1. नल नामक एक पौधा और होता है, जिसे भाषा में खुभिया, खुब्भी, खुब्भा कहते हैं। यह तृण जाति का अकृष्टपच्य (बिना जोते बोये पैदा होने वाला) पौधा है। यह दूर्बा के समान मुलायम, अंकुरवत, चढ़ाव उतार वाला, पोला एवं हरा होता है। तथा विशेष जल वाले स्थानों में या जिन खेतों में वर्षा काल में जल रहता तथा जाड़ों में नमी रहती है, तहाँ उत्पन्न होने वाला स्वयं रुह क्षुप है। इसका पौधा ½ फुट से 1½ या 2 फुट तक होता है। इसका एक बड़ा भेद महानल है जिसे देवनाल, नलोत्तम, स्थूलनाल आदि कहते हैं, यह 3—4 फुट तक होता है। यह पशुओं के चारे में खिलाया जाता है तथा नल का फलाहार आदि में विशिष्ट व्यवहार किया जाता हे।

सुश्रुत के मूत्र दोषहर नलादि क्षीर में इसका उल्लेख है—जिसमें नल, पाषाणभेद, कुश, ईख, ककड़ी, खीरे की जड़ या बीज, मोर बीजक (विजयसार) समभाग मिश्रण 2 तोला को 16 तोला दुग्ध व 64 तोला जल में पकावें। दुग्ध मात्र शेष रहने पर 1 तोला गौघृत मिलाकर सर्वमूत्र दोषों में पिलाने का विधान है। (सु0 उ0 तंत्र अ0 58)

इसी प्रकार सुश्रुत उ0 तंत्र अ0 26 में पित्त एवं रक्त प्रकोप जन्य शिरोरोग पर इसका विधान किया गया है।

नल के बीजों का लावा (लाई) ज्वरी को खिलाते हैं। अतिसार में देने से दस्त रुकता है। अम्लपित्त में इस लावे को देने से लाभ होता है। इसे अरूचि पर नमक व खट्टे अनार या नीबू के रस के साथ खाते हैं। यह फलाहार है, निर्बलता पैदा नहीं करता, स्फूर्ति, हल्कापन एवं रक्त शोधन करता है रक्तचाप में विशेष उपयोगी है। (श्री मोहनशरण मिश्र कमलेश कुटोर, वासाहांड़ा पोस्ट केपाल गया के लेख का संक्षिप्तसार यहां देते हैं। पूर्ण लेख धन्वन्तरि के अंक में प्रकाशित होगा)।

2. इस कुल में इस नल के साथ केवल दो और पौधे लुदुन (Condonopls Guata) तथा मुरा (Dyananthus) नाम के पाये जाते हैं। इनका वर्णन यथा प्रसंग आगे देखिये।

इसमें मुख्यतः लोबेलीन (Lobeline) नामक एक क्षाराभ लगभग 0.8% पाया जाता है। इसकी क्रिया तमाखू के निकोटीन (Nicotine) सदृश होती है।

गुणधर्म व प्रयोग :

मधुर, तिक्त, कसैला, उष्णवीर्य, एवं कफ, रक्त विकार, हृदय, बस्ति, योनि सम्बन्धी पीड़ा, उद्वेष्टन युक्त श्वास नलिका शोथ (ब्रांकाइटिस), तमकश्वास, कास आदि में प्रयुक्त होता है। अधिक मात्रा में यह विषैला है इसके प्रयोग से हृल्लास उत्पन्न होकर कफ निकलता है। तमक श्वास में आवेग के समय तथा बाद में भी इसके टिंचर की मात्रा 10 बूंद दिन में 3 बार अन्य औषधियों के साथ दी जाती है। उद्वेष्टनयुक्त कास में भी इससे लाभ होता है।

इसकी फली या पत्रों को थोड़ी देर चबाने से चक्कर कंप, शिरःशूल तथा अन्त में हृल्लास व वमन होता है। पूर्ण मात्रा में देने से शीघ्र ही तीव्र वमन तथा साथ ही हृल्लास, प्रस्वेद तथा शिथिलता उत्पन्न होती है।

वृषण शैथिल्य (अण्डकोष के ढीले हो जाने) पर इसकी जड़ 1 तो0 तक लेकर नारियल के रस में पीसकर पिलावें तथा कानों में जुवार के कोमल काण्ड के टुकड़ों को 14 दिन तक धारण करावें। —व0 गु0

कंठ नलिका शोथ पर—इसके क्षुप के तुर्रों का चूर्ण चिलम में रख, धूम्रपान कराते हैं। —व0 गु0

गठिया पर—इसकी जड़ को तिल तैल में पकाकर मालिश करने से लाभ होता है।

नोट—मात्रा—चूर्ण आधी रत्ती से 1½ रत्ती तक। टिंक्चर लोबेलिया इथेरिया 5 से 15 बूंद। अधिक मात्रा में—हृल्लास, वमन, शिरःशूल, कंप आदि लक्षण अत्यन्त तीव्र रूप से होते हैं तथा गले में जलन, ऐच्छिक क्रियाओं का धीरे—धीरे ह्रास, नाड़ी तीव्र तथा कमजोर, शैत्य, मूर्च्छा या सन्यास आदि लक्षण होते हैं। कभी—कभी मृत्यु भी श्वसन के रुकने से होती है। 5 से 8 रत्ती पत्र चूर्ण या बीज से तीव्र वमन होता तथा 4 माशा पत्र चूर्ण से मृत्यु हो सकती है। इसका विषैला परिणाम इसके प्रयोग के बाद कभी कभी वमन द्वारा विष के बाहर न निकलने के कारण होता है।

इसके उक्त कुप्रभाव के निवारणार्थ यूनानी चिकित्सा में कतीरा दिया जाता है। कतीरा इसका दर्पनाशक माना गया है।

विशिष्ट योग :

नरकटासव—इसके मूल सहित पंचांग को कुचल कर 10 सेर में 20 सेर जल मिला 12 घण्टे भिगोकर भवके द्वारा 12 सेर अर्क खींच लें। इस अर्क में 2½ सेर खांड, 3 पाव नरकट पंचांग का कल्क, खस, धनियां, नागरमोथा, श्वेतचन्दन का चूर्ण 4—4 तोला, धायपुष्प 3 पाव, बबूल छाल 1 पाव इनको जौकुटकर मिला दें। संधान पात्र में भर 20 दिन बन्द रखें। छानकर बोतलों में भर लें। मात्रा— 5 तोला तक सेवन से नेत्र रोग, पित्तप्रमेह, हाथ पैरों की जलन, श्वेतकुष्ठ, स्वप्नदोष, रक्तपित्त आदि दूर होते हैं।

—मिश्र बलवंत शर्मा वैद्यराज

नरगिस (Narcissus Tazetta)

तालमूली (मुसली स्याह) कुल (Amaryllidaceae) के इसके क्षुप प्याज के क्षुप जैसे, पत्र, मूल या कन्द, बीज प्याज के ही पत्रादि जैसे, किन्तु पुष्प सुगन्धित, सुन्दर, चमकीले छोटे—छोटे प्याले के समान 5—6 पखुड़ी वाले होते हैं। पत्र—कुछ श्वेत, नीले या पीले रंग के होते हैं।

यह भारत के बाग बगीचों में प्रायः सुगन्धित पुष्पों के लिए बोया जाता है। पुष्पों का इत्र, तैल आदि निकाला जाता है। इसके पुष्प वसंत ऋतु में विकसित होते हैं।

इसके मूल या कन्द को 'प्याजे नरगिस' कहते हैं तथा औषधि कार्यार्थ प्रायः यही लिया जाता है।

नोट—इसके नर और मादा दो भेद हैं— (1) नर, नरगिस में प्याज के समान 6 पत्तियां होती हैं। बीजकोष नहीं होता, किन्तु पुष्पों की खूब बहार रहती है। (2) मादा में डबल पत्तियां होती हैं। बीजकोष में काले रंग के बीज होते हैं। प्रायः इसी मादा नरगिस की जड़ 'प्याजे नरगिस' कहाती है तथा यही औषधि कार्य में ली जाती है।

नाम :

हि0— नरगिस (यह पंजाबी नाम है), ले0—नारकिसस टॅजेटा।

प्रयोज्यांग—मूल (प्याजे नरगिस)।

गुणधर्म व प्रयोग :

सुगन्धित, उष्ण, रूक्ष, वामक, लेखन, कफशामक शोथनाशक, द्रवशोषक, रक्तोत्क्लेशक, उदरकृमिनाशक गर्भनिस्सारक, बाजीकर तथा सिरपीड़ा आदि विकारों पर प्रयुक्त होता है। बीज—कामशक्ति उत्तेजक हैं।

(1) शीतजन्य प्रतिश्याय तथा नजले पर—इसके फूल सुंघाते हैं या इसके इत्र को सूंघते हैं।

(2) शरीर में कांच, कीलादि कोई शल्य प्रविष्ट होने पर इसकी जड़ के रस को लगाते हैं या जड़ को पीसकर लेप करते हैं। वह शल्य ऊपर को आ जाता है। फिर उसे सरलता से निकाल देते हैं।

(3) अन्य बाजीकर द्रव्यों के साथ इसके कन्द को

पीसकर पतला लेप करने से रक्तोत्क्लेश होकर शिश्न की वात नाड़ियों को बल प्राप्त होता एवं वह पुष्ट होता है।

अथवा–कन्द को 24 घण्टे गोदुग्ध में भिगोकर औटाकर व पीसकर शिश्न पर लेप करते हैं।

(4) शोथयुक्त फोड़े फुंसियों पर–इसका लेप करते हैं। सिर दर्द पर भी इसका लेप लाभदायक है। फुफ्फुस शोथ पर इसके तैल को छाती पर मर्दन करते हैं।

(5) वमनार्थ–कन्द को उबाल कर शुद्ध (साफ) कर उचित मात्रा में पीस, उसमें 10 से 14 तोला तक जल एवं शहद 4 तोला मिला पिलाते हैं। अथवा इसे 24 घण्टे दूध में भिगोकर सुखाकर सेवन कराते हैं। बिना कष्ट के वमन होती है। इससे उदरकृमि भी नष्ट होकर निकल जाते हैं। पूर्ण मात्रा–3 माशे तक है।

नरगिस
(Narcissus Tazetta Linn.)

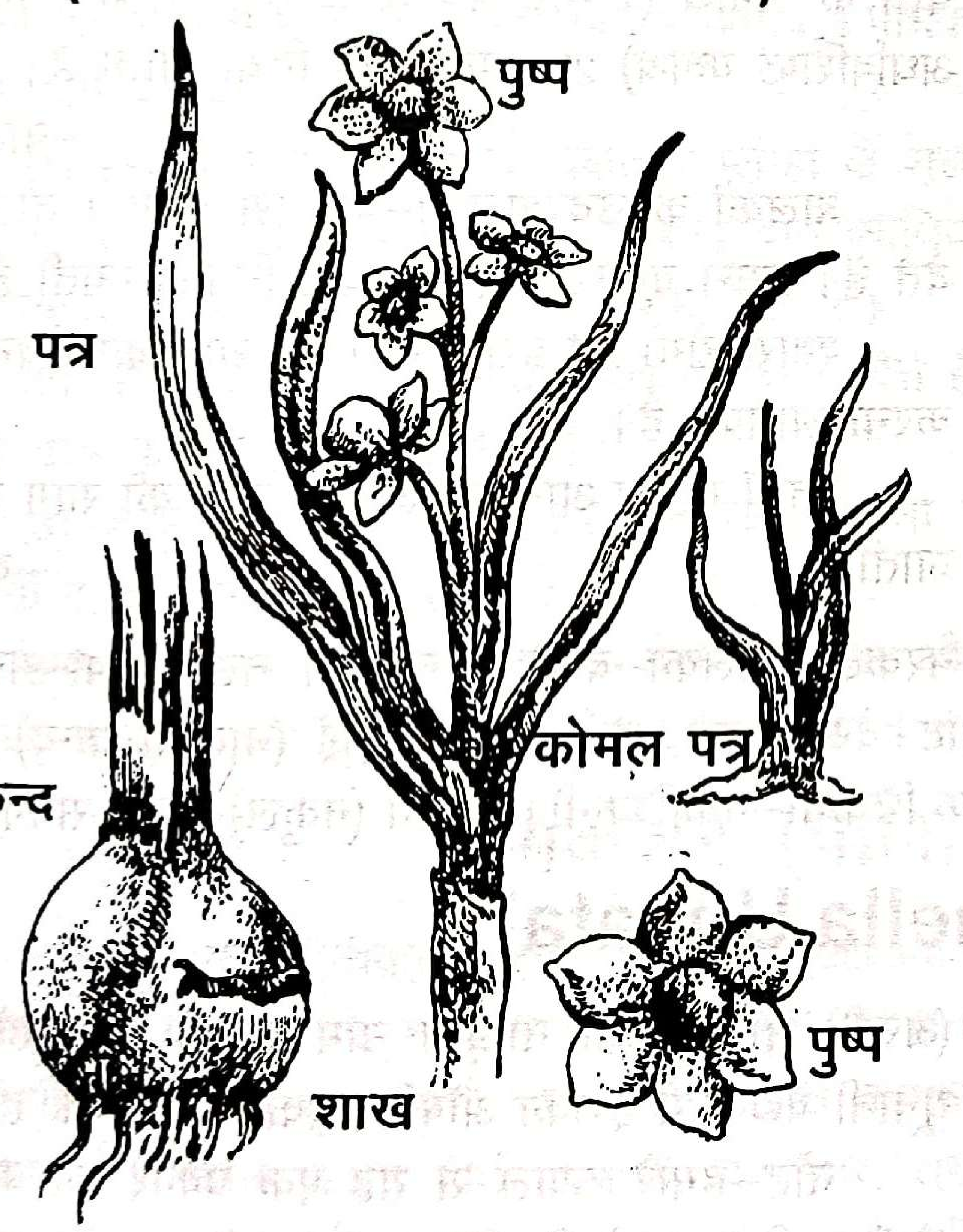

(6) गर्भाशय के दोष निवारणार्थ–कन्द का चूर्ण 2 माशे तक लेकर शहद और जल के पाक (1 भाग शहद और 4 भाग जल एकत्र पकावें, तृतीयांश रहने पर उतार कर ठंडा करें) के साथ सेवन करावें। (जल के स्थान पर अर्क गुलाव उक्त प्रमाण में मिला, पकाकर शर्बत से भी पतली चाशनी कर लें तो और उत्तम होता है)। इसके सेवन से अपरा एवं गर्भाशय के दोष दूर हो जाते हैं।

इसके कन्द को पीसकर योनिमार्ग में लेप करने से, या इसकी फलवर्ती बना गर्भाशय में रखने से भी गर्भाशय का मुख खुलकर उसके दोष दूर होते हैं। मूढ़गर्भ या मृतगर्भ के पातार्थ कन्द 3 माशा की मात्रा में पीसकर शहद के साथ चटाने से गर्भाशय से मृत बालक बाहर निकल आता है। उक्त शहद और जल या अर्कगुलाब के योग (मांउल अस्ल) के साथ इसे देने से भी अभीष्ट सिद्ध होता है।

(7) नेत्र विकार पर– अर्म (नाखूना रोग, जो नेत्र कोण के श्वेत भाग पर अर्धचन्द्राकार या त्रिकोणाकार लाल या श्वेत प्रवर्द्धन सा होता है, जिसे अंग्रेजी में टेरीजियम (Terygium) कहते हैं) पर कन्द का रस डालने से लाभ होता है।

यदि नेत्रकोण में खिचाव या ऐंठन हो, तो इसे पीस कर लेप करते हैं। आराम होता है।

(8) जखम या व्रण के रक्तस्राव पर–कन्द के चूर्ण को बुरकते हैं। रक्तस्राव शीघ्र बन्द होता है।

अग्निदग्ध पर–इसे पीसकर शहद मिला लेप करने से शांति प्राप्त होती है।

(9) मुख या चेहरे की कांति वर्द्धनार्थ–कन्द को पीस कर आड़ू अरु, सप्तालु (Prunus persica) के रस में मिलाकर मलने से चेहरा साफ होता तथा दाग दूर होते हैं।

नोट–मात्रा–1 से 3 माशा तक। अधिक मात्रा में सेवन से या फूलों को अधिक सूंघने से विशेषतः उष्ण प्रकृति वालों को शिरःशूल या मस्तिष्क विकृति होती है। हानि निवारणार्थ बनफशा, कपूर, नीलोफर का सेवन करावें।

विशिष्ट योग :

(1) चूर्ण नरगिस–इसके कन्द को छीलकर 7 दिन बरगद (बट) के दूध में भिगोकर रखें। फिर शुष्क कर चूर्ण कर लें। 3 माशा प्रातःसायं गो दुग्ध के साथ सेवन करने से वीर्य विकार दूर होकर वाजीकरण होता है। 21 दिन सेवन से पूर्ण असर प्रकट होता है। अथवा–

इसके कन्द और फूल दोनों को 21 बार बरगद के दूध की भावनायें देकर चूर्ण बनालें। इसमें समभाग मिश्री मिला शीशी में भर रखें। 3 माशा प्रातः सायं दूध के साथ सेवन करें। यह वीर्य वर्धक एवं रसायन है तैल, खटाई से परहेज करना आवश्यक है।

(2) तैल नरगिस–इसके ताजे कन्द के समभाग मालकांगनी का तैल मिला, मंदाग्नि पर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर, ठण्डा हो जाने पर छानकर रखलें। मात्रा–2 माशा है। यह वात रोग नाशक एवं बलकारक है। इसकी मालिश से वातजन्य शिरःशूल तथा शीतजन्य फुफ्फुस शोथ में लाभ होता है।

(3) नरगिस योग से हिंगुल भस्म–इसका एक बड़ा सा कन्द लेकर उसमें छिद्रकर उत्तम रूमी सिगरफ की 2

माशे की डली डालकर छिद्र को उसी के बुरादे से बन्दकर शराव संपुट करदें शुष्क हो जाने पर 21 बार लघुपुट देकर, खरलकर सुरक्षित रखें। मात्रा– ½ रत्ती, मलाई के साथ सेवन से स्तंभन एवं बाजीकरण होता है।

(ऊपर के कई प्रयोग 'अलहकीम' उर्दू के मासिक पत्र से लिये गये हैं)।

नरवेल (Viburnum Foetidum)

तिलक (थेल्का) कुल[1] (Caprifoliaceae) के इस वृक्ष की शाखायें, बिल्व वृक्ष की शाखा जैसी कुछ पीत धूसर वर्ण की; पत्र–छोटे लम्बे, दन्तुर होते हैं। इसमें एक प्रकार की उग्र गन्ध आती है।

ये वृक्ष दक्षिण भारत में बम्बई, कोंकण तथा पश्चिम भारत, खासिया पहाड़, आसाम, उत्तर वर्मा में अधिक पाये जाते हैं।

नाम :

नरबेल यह नाम बम्बई, महाराष्ट्र एवं कोंकण की ओर का है। लेटिन–व्हायवर्नम फिरीड़म। अन्य भाषा के नाम अज्ञात हैं।

रासायनिक संगठन– इसमें फीटिड़ (Fuetid) नामक एक प्रभावशाली उड़नशील तैल तथा एक श्वेत चमकीला तीक्ष्ण स्वाद वाला क्षाराम एवं गोंद, राल व क्षार 12% पाये जाते हैं।

1. इस कुल के गुल्म या वृक्षों के पत्र अभिमुख, उपपत्र रहित, पुष्प बाह्यकोष के दल 3–5; पुष्पाभ्यन्तर कोश के दल 5;, पुंकेशर 4 या 5 बीजकोष 2–8 कोष्ठयुक्त होता है। इस कुल के कुल 3–4 वृक्षों का पता लगा है।

गुणधर्म व प्रयोग :

तिक्त, कटु, ग्राही, शूल एवं दाहशामक, स्तन्य, रजः स्थापनीय, वातशोथ हारक तथा गर्भाशय विकृतिनाशक हैं।

गर्भाशय की विकृति–अधिक रजःस्राव, रक्तप्रदर, प्रसव पश्चात् का अधिक रक्तस्राव, कष्टार्त्तव, गर्भपात, प्रसव के पश्चात् की उदर पीड़ा आदि पर–इसका पत्र रस 1¼ तोले से 2½ तोला तक; या इसका अर्क 2 से 6 माशा तक, या पत्तों का क्वाथ (1 भाग पत्र और 10 भाग पानी मिलाकर अर्धावशिष्ट क्वाथ) 2½ तोला तक दिया जाता है।

–नाड़कर्णी

बालकों के उदरशूल में–पत्र रस ½ से 1 तोला तक देते हैं। इससे कृमि भी नष्ट होकर निकल जाती है।

श्वास रोगी को इसके पत्तों की साग का सेवन नित्य करना लाभप्रद है।

स्तनों में दूध आने के लिये भी पत्तों की साग खिलाई जाती है। –व0 गु0

नरमा–देखो कपास में। नरसल–देखो–नरकट। नल देखो–नरकट। नलिका–देखो रतनजोत। नली–देखो–मेस्टापाट (अम्बाड़ी)। नसपाल–जंगली अनार का छिलका। नहानी खपाट–देखो कंघी और जैत में। नाई (नाकुली कन्द) देखो–सर्पगन्धा में और चिरायता छोटा में। नाक–देखो नासपाती। नाक छिकनी–नकछिकनी। नकुली (नकुल)–देखो सर्पगन्धा में।

नाखूना (Trigonella Uncata)

शिम्बी कुल के अपराजितादि उपकुल (Papilicanaceae) के इसके छोटे–छोटे मुलायम क्षुप मेथी के क्षुप जैसे पत्र छोटे–छोटे गोलाकर तीन–तीन के गुच्छों में; पुष्प–श्वेत, लम्बे; फली–कड़ी, लम्ब गोल, कटे हुए नाखून जैसी, पीताभश्वेत, अर्धचन्द्राकार, ऊपर की ओर कुछ छत्राकार, बाहर की ओर टेढ़ी, लगभग 1 इंच लम्बी, दोनों ओर की गहरी रेखा युक्त, द्विकोष्ठ युक्त प्रत्येक कोष्ठ में पीले रंग के मेथी बीज सदृश बीज 1 या 2 होते हैं। गंध भी मेथी जैसी होती है। इस फली को ही नाखूना कहते हैं तथा औषधि कार्य में यही ली जाती है।

इसका उत्पत्ति स्थान पर्शिया है। किन्तु भारत में भी इसका एक भेद पाया जाता है। तथापि इसका आयात पर्शिया से ही यहां होता है और बाजार में इकलीलुलमलिक (अरबी) नाम से या नाखूना नाम से भी प्राप्त होता है। यूनानी वैद्यक में इसका औषधि व्यवहार विशेषतः होता है।

नोट–हमारे ख्याल से यह एक प्रकार की बन मेंथी होनी चाहिए। बनौषधि विशेषज्ञ डॉ0 डिमक का कथन है कि इसका भेद Melilotus Parviflora (मेलिलोटस परविफ्लोरा) भारतवर्ष में पाया जाता है तथा शरद ऋतु में यह बंगाल व बेलगांव में शाकार्थ बोया जाता है, जहां इसे तिरापी कहते हैं।

यूनानी ग्रन्थ मखजन में भी इसके एक भारतीय भेद का उल्लेख है। आगे यथास्थान वन मेंथी प्रकरण देखें।

नाम :

हि0–नाखूना (यह फारसी शब्द है)। अं0–टांकिन बीन (Tonkinbean) मेलीलांट (Melilot), किंग्ज क्राउन (Kings

Crown)। ले0—ट्रिगोनेला अंकटा, मेलिलोटस ऑफिसिनेलिस (Melilotus Officinalis)।

रासायनिक संघटन— इसमें एक स्फटिकाभ, अति तीव्र सुगन्धी सत्व कोमेरीन (Coumarin) नामक पाया जाता है, जो नारकोटिक (Narcotic) तथा हृदयावसादक है। आमाशय में अति क्षोभकारक है। इसे 15 से 30 रत्ती की मात्रा में देने से हृल्लास, भ्रम, वमन एवं निर्बलता प्राप्त होती है। इस सत को प्रायः सुगन्धी के लिये (प्रति औंस ¼ रत्ती की मात्रा में) मलहम, पोमेड्स, या तैल में मिलाते हैं। आयडोफार्म की दुर्गन्ध दूर करने के लिये 85 भाग आयडोफार्म में यह सत 2 भाग तथा बालसम आफ पेरू 3 भाग मिलाते हैं।

प्रयोज्यांग—फली।

गुणधर्म व प्रयोग :

उष्ण, रूक्ष, समशीतोष्ण, कुछ ग्राही, संकोचक, बल्य, निद्राजनक, शोथ व शूल हर, वेदना शामक, आमदोष पाचक, स्तन्य, आर्त्तव प्रवर्त्तक है।

(1) इसका क्वाथ आमाशय, यकृत व प्लीहा के शूलों पर तथा पक्षाघात, धनुष्टंकार, अपस्मार आदि वात व्याधियों पर लाभकारी है। इससे श्वास में भी लाभ होता है।

(2) आंत्र विकारों पर—इसके क्वाथ की बस्ति देते हैं, इससे आंत्र को शक्ति प्राप्त होती है।

(3) कड़ी, कठोर शोथ पर—इसे बनफसा, अलसी व मेंथी के साथ पीसकर लेप करते हैं।

उष्णताजन्य या पैत्तिकशोथ पर—इसे खसखस और मुर्गी के अण्डे की सफेदी के साथ पीसकर लेप करते हैं।

(4) अभिघात या चोट में—इसे केशर के साथ पीस कर लेप करते हैं।

(5) पैत्तिक शिरःशूल पर—इसे गुलरोगन और सिरका के साथ पीसकर प्रलेप करते हैं।

(6) शीत ज्वर पर—ज्वर की हालत में इसे 4½ माशा की मात्रा में पानी के साथ देते हैं। इससे दस्त भी खुलकर होता है।

(7) कर्ण पीड़ा पर—इसके फाण्ट या क्वाथ को छान कर कानों का प्रक्षालन करते हैं। या कान में कुछ बूँदें टपकाते हैं।

(8) गुदा और अण्डकोष की वेदना पर—इसका प्रलेप करने से वेदना शान्त होती है।

(9) सिर के गंज पर—इसे सिरके में पीसकर लेप करते हैं।

(10) भ्रम (चक्कर आना), हृत्कम्प तथा पक्षाघात पर—इसके क्वाथ का बफारा देते हैं तथा इसे तैल में पकाकर मालिश करते हैं।

इसे 7 माशा तक की मात्रा में शहद के साथ चटाने से तथा रोगी के सिर पर इसके क्वाथ का प्रक्षालन करने से भ्रम में विशेष लाभ होता है। यह प्रयोग नित्य नहीं प्रत्युत 3–3 दिन बाद किया जाता है।

नोट—मात्रा 2 से 7 माशा तक। इसके फाण्ट या रस की मात्रा 5½ तोला तक। यह वृषणों को अहितकर है। इसका हानि निवारक अंजीर तथा शहद है। इसके प्रतिनिधि—मेंथी, लोभान, बाबूना व अलसी हैं।

नागकेशर (पीला) (Mesua Ferrea)

कर्पूरादि वर्ग एवं स्वकुल नागकेशर कुल[1] (Guttiferae) का सदा हरा भरा, सुन्दर, मध्यप्रमाण के इस वृक्ष का तना गोल, सीधा, चिकना धूसर वर्ण का; शाखायें अति कोमल, साधारण गोल, छाल ¼ इंच मोटी चिकनी, चटटेदार, राख के रंग की, अन्दर की लकड़ी रक्ताभ पीत वर्ण की; पत्र—अभिमुख, 2 से 6 इंच लम्बे, 1½-1¾ इंच चौड़े, नुकीले शल्याकार, कुछ झुके हुए, उर्ध्व पृष्ठभाग हरित, चिकना शुभ्रवर्ण का, अधः पृष्ठ भाग श्वेताभ एवं श्वेतरज से आवृत; पत्र वृन्त ¼ से 1/3 इंची, पुष्प—वसंत ऋतु में ऊपर के पत्र कोणों से निकले हुए नियमित, गोल 2–4 इंच व्यास के श्वेतवर्ण के, सुगंधित, पुष्प बाह्य दल स्थायी, कठोर एवं भीतर पुंकेशर गुच्छों में भी होते हैं। तथा इन्हीं पुंकेशर के गुच्छों को नागकेशर कहते हैं। यही असली नागकेसर है औषधि कार्य में यही उत्तम कारगर होता है। फल—शरद ऋतु में 1–1½ इंची लम्ब गोल, अग्र भाग में कुछ दबा हुआ सा, पकने पर कुछ लाल हो जाता है। इससे एक प्रकार का निर्यास निकलता है। बीज संख्या में 1 से 4 तक, कड़े मेंहदी के बीज जैसे, धूसर वर्ण के चमकीले होते हैं। मूल कोमल गहरे लाल वर्ण की अन्तःभाग में हरी होती है।

इसके वृक्ष विशेषतः उत्तर, पूर्व बंगाल, छोटा नागपुर पूर्वी हिमाचल प्रदेश, नेपाल, कूचबिहार, आसाम, दक्षिण भारत कोंकण, पूर्व एवं पश्चिमी घाट, मैसूर, बर्मा, अण्डमान

1. इस कुल के वृक्ष बड़े, पत्र अभिमुख, सादे, अखण्ड चर्मसदृश, पुष्प नियमित, द्विबीजपर्ण, विभक्तदल, पुष्पवाह्य एवं अभ्यंतर कोश के दल 4–12, पुंकेशर अनियत, बीजकोष अधःस्थ; फल मांसल। पुष्प सुन्दर एवं सुगन्धित होते हैं तथा वृक्ष से प्रायः पीत वर्ण का निर्यास (गोंद) निकलता है।

आदि प्रदेशों में 5 हजार फीट की ऊँचाई पर पाये जाते हैं। तथा पुष्प एवं फल के सुन्दर सुगन्धित होने के कारण ये उद्यानों में भी रोपण किये जाते हैं।

नोट– (1) बाजारों में जो गोल भूरे लाल वर्ण के गन्धहीन बीज या दानों के रूप में नागकेशर बेचा जाता है, वह असली नागकेशर नहीं है। शायद दालचीनी के फल है जिन्हें काला नागकेशर कहते हैं।

ध्यान रहे, नागकेशर के नाम से प्रायः निम्नांकित तीन नागकेशर प्रचलित हैं–एक तो उपरोक्त दालचीनी के फल हैं, जो काला नागकेशर कहाता है जिसके गुण धर्म प्रायः दालचीनी के समान ही हैं। दूसरा प्रस्तुत प्रसंग में वर्णित नागकेशर है। जिसे प्रायः बंगाल का नागकेशर कहते हैं ये पुष्पों के भीतर के पुंकेशर के गुच्छों के रूप में होता है।

तीसरा इसी कुल के दक्षिण की ओर अधिक होने वाले वृक्षों (Ochrocarpus Longilifolio) के पुष्पों की कलिकाएं हैं। जिन्हें लाल नागकेसर कहा जाता है। इसका वर्णन आगे के प्रकरण में देखें।

इसी कुल के पुंन्नाग वृक्ष (Callophyllum Inophyllum) की कलिकाएं भी नागकेशर कही जाती हैं। यह वर्मा या सीलोन का नागकेशर कहाता है। इसका वर्णन यथा स्थान पुन्नांग (सुल्तान चम्पा) के प्रकरण में देखिये।

यहाँ एक बात विचारणीय है कि यद्यपि चरकसंहिता में तथा व्यवहार में भी नागकेशर का प्रयोग प्राचीनकाल से रक्तार्श पर किया जाता है। तथापि निघण्टु आदि में वर्णित इसके शास्त्रीय गुणधर्म में अर्श के विकार नाशक गुण का कहीं उल्लेख हमें तो नहीं प्राप्त हुआ। दालचीनी के गुणों में तथा उसके फल काले नागकेशर के गुणधर्म में अर्शनिवारक गुण का स्पष्ट उल्लेख पाया जाता है। अस्तु।

नं0 2– सुश्रुत के एलादि, प्रियंग्वादि, अंजनादि गणों में इसकी गणना है तथा हिक्का पर इसका प्रयोग शहद व मिश्री के साथ किया गया है। चरक ने रक्तार्श पर मक्खन व मिश्री के साथ इसका विधान किया है। भाव मिश्र ने इसे चातुर्जात में लिया है।

नं0 3– ध्यान रहे संस्कृत में नागकेशर एवं उसके पर्यायवाची शब्द पुल्लिंग में (नागकेशर आदि) हों तो वे उसके वृक्षवाची होते हैं तथा यदि नपुंसकलिंग में (नागकेशर आदि) हों तो पुष्पवाची समझे जाते हैं "अयं पुष्पेतु क्लीवे"।

–भा0 प्र0

इसके पर्यायवाची शब्दों में नागचम्पा नाम आया है। नाग–चम्पा श्वेतचम्पा को भी कहते हैं। किन्तु वह इससे भिन्न है।

नाम :

सं0– नागकेशर, केशर, नागपुष्प, चाम्पेय आदि। हि0– नागकेशर (पीला) नागेसर, नारेमुष्क, नागचम्पा इ.। म0– नागकेशर, नागचांफा। गु0–पीलूँ नागकेशर। बं0–नागेश्वर। अं0–कोबराज सफ्रांन (Cobras saffron) ले0–मेसुआ फेरिया, मे0 राक्सवर्गी (M. Roxburghii) मे0 कारोमंडलिना (M. Coromandalina)।

नागकेसर असली (नागेश्वर)
(Mesua Ferrea Linn.)

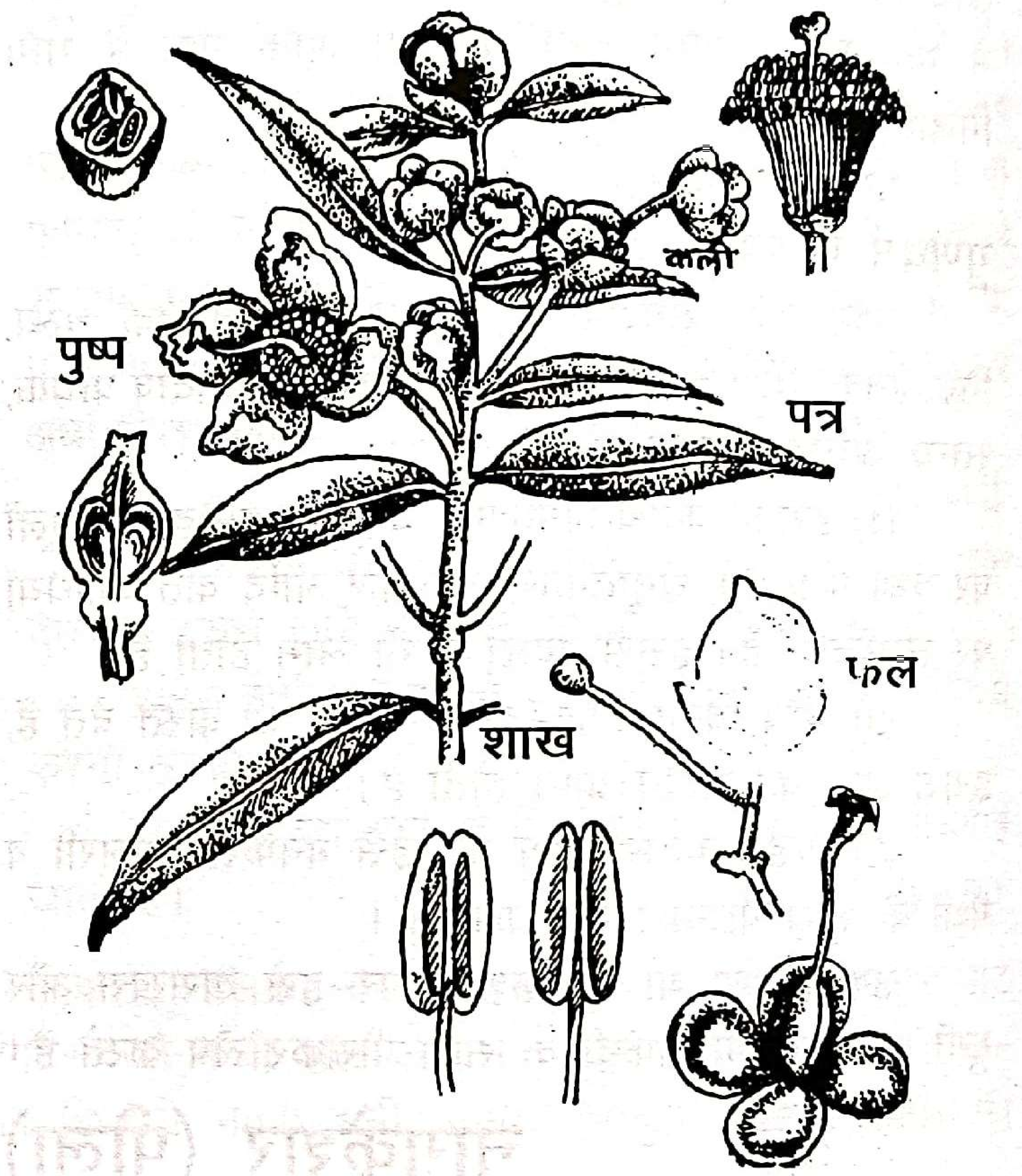

रासायनिक संघटन :

इसके कच्चे फलों में एक तैलयुक्त राल (Oleoresin) होता है जिसमें एक पीताभ, तारपीन जैसा, सुगंधित उड़नशील तैल पाया जाता है। बीजों में एक स्थायी तैल 39 से 48 प्रतिशत तक पाया जाता है यह प्रायः साबुन बनाने के काम में आता है। फलावरण में कषायद्रव्य (टेनिन) तथा केशर में दो तिक्त पदार्थ पाये जाते हैं।

प्रयोज्यांग–पुंकेशर, पुष्प, फल, पत्र, बीज, मूल, छाल व तैल।

गुणधर्म व प्रयोग :

लघु, रूक्ष, कषाय, तिक्त, कटु-विपाक, किंचित् उष्णवीर्य, कफ पित्तशामक, दीपन, पाचन, तृष्णानिग्रहण, ग्राही, यकृत्, आमाशय एवं मस्तिष्क के लिये बल्य, हृद्य, शोणितस्थापन (रक्तसंग्राहक), गर्भस्थापक, बाजीकरण, मूत्रल, बल्य, विषघ्न, दुर्गन्धनाशन, स्वेदापनयन, उत्तेजक तथा

मस्तिष्कदौर्बल्य, उन्माद, अग्निमांद्य, अजीर्ण, हृल्लास, बस्तिविकार, वमन, आध्मान, उदरकृमि, अर्श प्रवाहिका, हृद्दौर्बल्य, रक्तपित्त, गर्भपात, अतिसार, रक्तविकार, कास, श्वास, हिक्का, रक्तप्रदर, मूत्राघात, कुष्ठ, विसर्प, ज्वर, दौर्बल्य आदि में प्रयुक्त होता है।

इसका लेप दुर्गन्ध, अतिस्वेद और व्रणों पर करते हैं। नपुंसकता में इसका लेप शिश्न पर किया जाता है। व्रणों को सुखाने के लिये इसका शुष्क महीन चूर्ण बुरकते हैं। स्वरभंग में इसके साथ इलायची और मिश्री मुख में रखते हैं। हाथ पैरों की जलन पर इसे शतधौत घृत में मिला मर्दन करते हैं, अथवा इसके चूर्ण के साथ शक्कर और मक्खन मिला लेप करते हैं।

(1) रक्तार्श पर–इसके चूर्ण के साथ मक्खन और खांड मिलाकर प्रतिदिन सेवन करावें (च० चि० अ० 14)। अथवा–इसके साथ समभाग खूनखराबा (हीरादोखी) का महीन चूर्ण कर, मात्रा–2 माशा दिन में 3–4 बार यथावश्यक मोसम्बी, मीठा अनार, दूर्वा या हरी धनियां पत्र इनमें से किसी के रस के साथ या उदुम्बरसार 1½-3 माशा तक ठण्डे जल 5 तोला में मिलाकर उसके साथ देने से अर्श का रक्त बन्द होता है। –सिद्ध योग संग्रह

अथवा–इसे 13 माशा की मात्रा में रात को भिगो, प्रातः मल छानकर उसमें मिश्री या मधु मिला कुछ दिन (40 दिन तक) पीने से अर्श का रक्तस्राव बन्द होकर मस्से सूख जाते हैं। –यूनानी

अथवा–इसके चूर्ण के साथ समभाग शक्कर मिला सेवन करें, प्रातःसांय, 2–3 अंजीर पानी में भिगोकर खाया करें। तैल, मिर्च, खटाई से परहेज करें।

(2) प्रदर पर–इसका चूर्ण 4 तोले, श्वेत राल व मुलैठी चूर्ण 3–3 तोले और मिश्री 10 तोले एकत्र महीन खरल कर 4 माशे की मात्रा में प्रायःसायं मिश्री मिले हुए सुखोष्ण गोदुग्ध के साथ सेवन करने से सर्व प्रदर दूर होते हैं। –गुप्त सिद्ध योग

श्वेत प्रदर, सोमरोग (जलप्रदर) हो, तो इसके 3 माशा चूर्ण को तक्र के साथ, 3 दिन दवें। पथ्य में चावल और तक्र का सेवन करें। –भाव प्र०

(3) अतिसार, प्रवाहिका या आमातिसार तथा बालकों की रक्त संग्रहणी पर–इसका चूर्ण रात को घृत में भिगो, प्रातः गोली सी बना खिलावें। इसी प्रकार प्रातः घृत में भिगोकर सायं खिलावें। 3 दिन तक। –व० गु०

अतिसार पर–नागकेशरादि चूर्ण विशिष्ट योग देखें।

(4) गर्भ धारणार्थ तथा वीर पुत्र के जन्मार्थ–इसके साथ सुपारी का समभाग मिश्रित चूर्ण (2–3 माशे की मात्रा में गो घृत के साथ, ऋतुकाल से आरम्भ कर 14 दिन तक) सेवन कराने से गर्भ धारण होती है। बं० से०

ऋतु काल में इसके महीन चूर्ण को गौघृत के साथ सेवन करने तथा केवल गाय के दूध पर ही रहने से अवश्य वीर पुत्र की प्राप्ति होती है। –ग० नि०

(5) रक्त प्रमेह पर–इसके साथ समभाग कंकोल (कबाव चीनी) 3–3 माशा लेकर, अष्टमांश क्वाथ सिद्ध कर ठण्डा होने पर पिलावें। –व० गु०

(6) हिक्का पर–इसका चूर्ण (6 माशे से 1 तोले तक) शक्कर (6 माशा) एवं शहद (3 से 6 माशा तक) एकत्र मिला, ईख का रस तथा महुए का रस (प्रत्येक 2 से 4 तोला तक) के साथ पीने से हिक्का नष्ट होती है।

–सुश्रुत उ० तंत्र अ० 50।

(7) गर्भस्राव या गर्भपात पर–तीसरे मास में या 5 महीने के पूर्व यदि गर्भस्राव का भय हो, गर्भिणी के गर्भाशय में वेदना हो, तो इसके चूर्ण में मिश्री और बंसलोचन का चूर्ण मिला, गाय के कच्चे दूध के साथ सेवन करावें तथा दस्तावर पदार्थों का पूर्ण परहेज करावें।–अ० यो० माला से

पुष्प–नागकेसर के फूल उत्तेजक हैं। उदराध्यमान, अम्लपित्त, अर्श आदि पर इनका प्रयोग किया जाता है। आध्मान में फूलों को कालीमिर्च के साथ पीसकर लेप करते हैं। सिरके के साथ घोटकर किंचित् मात्रा में पिलाने से अम्लपित्त की शांति होती है। इन्हें जल के साथ पीसकर पैर के तलुवों पर गाढ़ा लेप करने से तलुवों की जलन दूर होती है तथा यह लेप अर्शांकुरों पर करने से अर्श की जलन शान्त होती है। अन्य द्रव्यों के क्वाथ को या तैलों को सुगंधित करने के लिये इनका उपयोग किया जाता है। पुष्पों का इत्र नपुंसकतानाशक है। इसे 1 रत्ती की मात्रा में पान के साथ खिलाते हैं।

पत्र–उष्ण, शीतजन्य, पीड़ानिवारक, मृदुकर एवं विषघ्न हैं। पत्तों को पीसकर दूध और नारियल तैल के साथ गरम कर पुल्टिस बना शीत या वातजन्य सिर पीड़ा पर बांधते हैं। इससे सिर दर्द और जुकाम पर भी लाभ होता है।

पत्र और पुष्पों का प्रयोग विशेषतः बंगाल की ओर बिच्छू और सर्पदंश पर किया जाता है। इनका लेप करते तथा पानी में घोंटकर पिलाते भी हैं।

छाल और मूल–इसके वृक्ष की छाल और जड़ का क्वाथ या फाण्ट कास, फेंफड़ों की सूजन (ब्रांकाइटिस) तथा अमाशय के प्रक्षोभ (Gastritis) पर सेवन कराते हैं। छाल व मूल–तिक्त और सुगंधित होती हैं। छाल कुछ संग्राही हैं।

फल–ग्राही तथा पाकस्थली की पीड़ा निवारक है। कच्चे फल कटु, विरेचक तथा सुगंधित होते हैं।

तैल–इसके बीजों का तैल वेदनास्थापन है। संधिवात एवं अन्य वातजन्य पीड़ा तथा खुजली, पामा एवं अन्य चर्मविकारों पर इसका मर्दन करते हैं। खुजली या पामा (एग्झीमा, उकवत) में इस तैल के साथ थोड़ा कमीला मिला लिया जाता है।

इस तैल का आभ्यन्तर प्रयोग भी किया जा सकता है, यह विषाक्त नहीं है। जननेन्द्रिय, मूत्राशय एवं वृक्क स्थान की श्लैष्मिक कला पर इसका बहुत अच्छा असर होता है। यह उत्तम औषधि है, मैंने इस तैल को पिया है।

–डॉ0 मुहदीन शरीफ

निर्यास या गोंद–इसके वृक्ष का गोंद सुगंधित तथा मृदुकर है। इसे जल में भिगोने पर कुछ समय पश्चात् जो तैल या स्निग्ध तरल द्रव्य ऊपर आ जाता है उसे नेत्र व्रणों पर लगाना लाभकारी है।

नोट–मात्रा–चूर्ण 4 से 8 रत्ती। यह उष्ण प्रकृति एवं यकृतविकार वालों के लिये कुछ हानिकर है। हानिनिवारक–बंसलोचन, शुद्ध शहद, कासनी के बीज आदि हैं। इसके प्रतिनिधि–नागरमोथा, बालछड़ और नारियल हैं।

विशिष्ट योग :

नागकेशरादि चूर्ण अतिसार पर–इसका चूर्ण 4 तो0 बेलगिरी, अनीसून[1] सौंफ, 2–2 तोला, तथा खसखस, छोटी इलायची, धनियां, मोचरस, खस, श्वेत चंदन, गुलाब के फूल और कपूर कचरी 1–1 तोला तथा जल से धोकर सुखाई हुई भांग व मिश्री 5–5 तोला सबका एकत्र महीन चूर्ण बनालें। मात्रा–2–3 माशा जल के साथ लेवें। पित्तातिसार और रक्तातिसार में यह एक उत्तम योग है। इस चूर्ण को अकेला या रसपर्पटी के साथ मिलाकर देवें।

–सिद्धयोग संग्रह

1. यह सौंफ की जाति का एक यूनानी द्रव्य है। इसका विशेष वर्णन सौंफ के प्रकरण में देखिये।

नाग केसर लाल (Ochrocarpus Longifolius)

उक्त पीले नागकेशर कुल (Guttiferae) के इस सदा हरित, मध्यम ऊँचाई के वृक्ष की शाखायें गोलाकार छाल ¼ इंच मोटी, रक्ताभ धूसर वर्ण की; लकड़ी लोह जैसी वजनदार काली या लाल वर्ण की; पत्र–5–6 इंच लम्बे, 2–1½ इंच चौड़े, गहरे रहित वर्ण के, वृन्त की ओर गोल, सिरे पर नुकीले; पुष्प–वसन्त ऋतु में, प्रायः उभय लिंगी, सुन्दर, सुगन्धित, 4 अन्तर्दल वाले, लाल रेखांकित श्वेत या पीताभ रक्त वर्ण के, गुच्छों में आते हैं। इन पुष्पों की अविकसित शुष्क कलिकायें नागकेसर के नाम से बिकती हैं। ये कलिकायें गोल, नुकीली, नारंगी रंग की लगभग ½ इंच लम्बी तथा स्वाद में कुछ अम्ल, तिक्त एवं मधुर होती हैं।

फल–पुष्प के पश्चात् ही वृक्ष में, मौलसिरी (बकुल) के फल जैसे 1 इंच लम्बे, गोल, नुकीले एवं एक बीज युक्त फल आते हैं। ये फल पकने पर खाये जाते हैं।

इसके वृक्ष दक्षिण में कोंकण से मलावार तक समुद्र तटवर्ती प्रदेशों में विशेष पाये जाते हैं।

नाम :

सं0–सुरपुन्नाग, नमेरू, सुरपर्णिका। हि0–नागकेशर लाल, नकली नागकेशर। म0–सुरंगी, तामड़ा नागकेशर, फलको, गोडीडडी। गु0–रातु नागकेशर। बं0–नागकेशर, सुरिंगी। अं0–अलेक्झेन्ड्रियन लारेल (Alexandrian Laurel)। ले0–आक्राकार्पस लांगिफोलियस।

गुणधर्म व प्रयोग :

सुगंधी, ग्राही, संकोचक, कटु, तिक्त, मधुर, पीड़ा नाशक, दीपन है। इसके गुण धर्म एवं प्रयोग पीले नागकेसर जैसे ही किन्तु कुछ न्यून गुण वाले हैं।

नागकेशर नकली

(Ochrocarpus Longifolius Benth.)

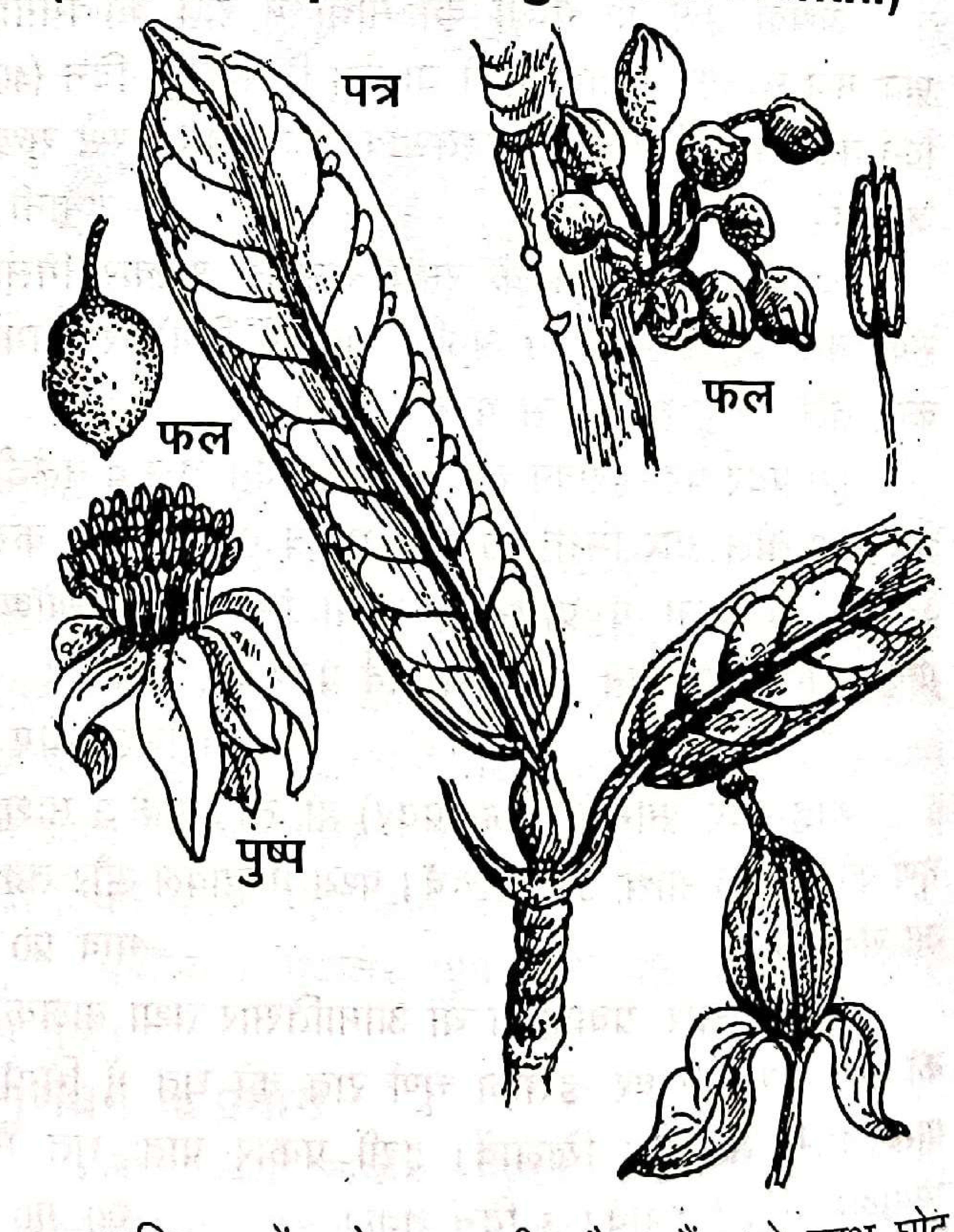

अतितृषा में इसे इलायची और लौंग के साथ घोट पीसकर पिलाते हैं। इससे उदर शूल में भी लाभ होता है।

कृमि युक्त दंत वेदना पर–इसका चूर्ण दांत की खोखल में रखते हैं।

इसके पुष्पों का अर्क ज्वर रोगी के स्नानार्थ प्रयोग में लाया जाता है। इससे रोगी का पित्तशमन होकर आह्लाद की प्रतीति होती है।

मात्रा—1 से 3 माशा तक।

नागचम्पा देखो—नागकेशर। नागदन्ती देखो घनसर व हस्तिदन्ती में।

नाग दमनी नं० 1 [1](Crinum Asiaticum)

तालमूली कुल (Amaryllidceae) के इस बहुवर्षायु, कंदयुक्त क्षुप की पत्र संख्या 20 से 30 तक, 2 से 6 फुट लम्बे, 5–6 इंच चौड़े, चामड़, बल्लमाकार, चिपटे सकरे चमकीले, गहरे हरितवर्ण के, बीच–बीच में श्वेत रेखा या पट्टों से युक्त, छोटी नोंकवाले, दीखने में सर्प जैसे (अतः इसे नागपत्रा कहा गया है); पुष्प–प्रायः वर्षाकाल में क्षुप के मूल से निकले हुए 1½ से 3 फुट लम्बे, गोल, लगभग 1-1½ इंच व्यास के पुष्पदण्ड (शलाका) पर सुन्दर, रात्रिविकसित, सुगंधित श्वेत पुष्प, छोटे गोलाकार, पुष्पपत्र 3–4 इंच लम्बे पुंकेशर रक्ताभ (दूर से देखने पर ये पुष्प विशेषतः अविकशित अवस्था में ऐसे दीखते हैं मानों छोटे–छोटे सपैले फन काढ़े हुए लटक रहे हों इसी से इसे नागपुष्पी कहा गया है); फल–इसमें स्वतन्त्र रूप से फल नहीं आते, पुष्पों के मध्य में ही, लगभग गोलाकार 1–2 इंच व्यास के लहसन की कली जैसे 1 या 2 बीज होते हैं। कन्द 6–12 इंच लम्बा, प्याज जैसे छिलकों से आच्छादित तथा अनेक छोटे छोटे मूलयुक्त होता है।

इस नागदमनी के क्षुप भारत के प्रायः सर्वउष्ण प्रदेशों में, बंगाल, चटगांव, सुन्दरबन, दक्षिण में कोंकण तथा सीलोन में विशेषतः नैसर्गिक एवं बागों में भी लगाये जाते हैं।

नोट नं0 1– उक्त वर्णित नागदमनी का लेटिन नाम कई लोगों ने आर्टेमिसिया व्हल्गेरिस (Artemisia Vulgaris) भ्रमवश दे दिया है। वास्तव में इस लेटिन नाम वाला क्षुप भृंगराज कुल (Compositae) का एक प्रकार का दौना है, नागदौन या नागदमनी नहीं है। इसमें विषनाशक शक्ति का अभाव है। तथापि बहुजन संतोषार्थ हमने इसका वर्णन आगे नागदमनी नं0 3 के प्रकरण में किया है।

नोट नं0 2– काली नगदी Orthosiphon Pallidus (Royle) अजगुर नाम से इसका कुछ वर्णन प्रथम भाग में दिया जा चुका है।

कुछ लोग इसे नागदमनी कहते हैं। इसमें विषनाशक शक्ति है, किन्तु यह नागदमनी नहीं है। हम इसका वर्णन यहां यूनानी द्रव्यगुण विज्ञान तथा वैद्याचार्य श्री उदयलाल जी महात्मा के लेख के आधार पर करते हैं।

नाग दमनी नं० 1
(Crinum Asiaticum Linn)

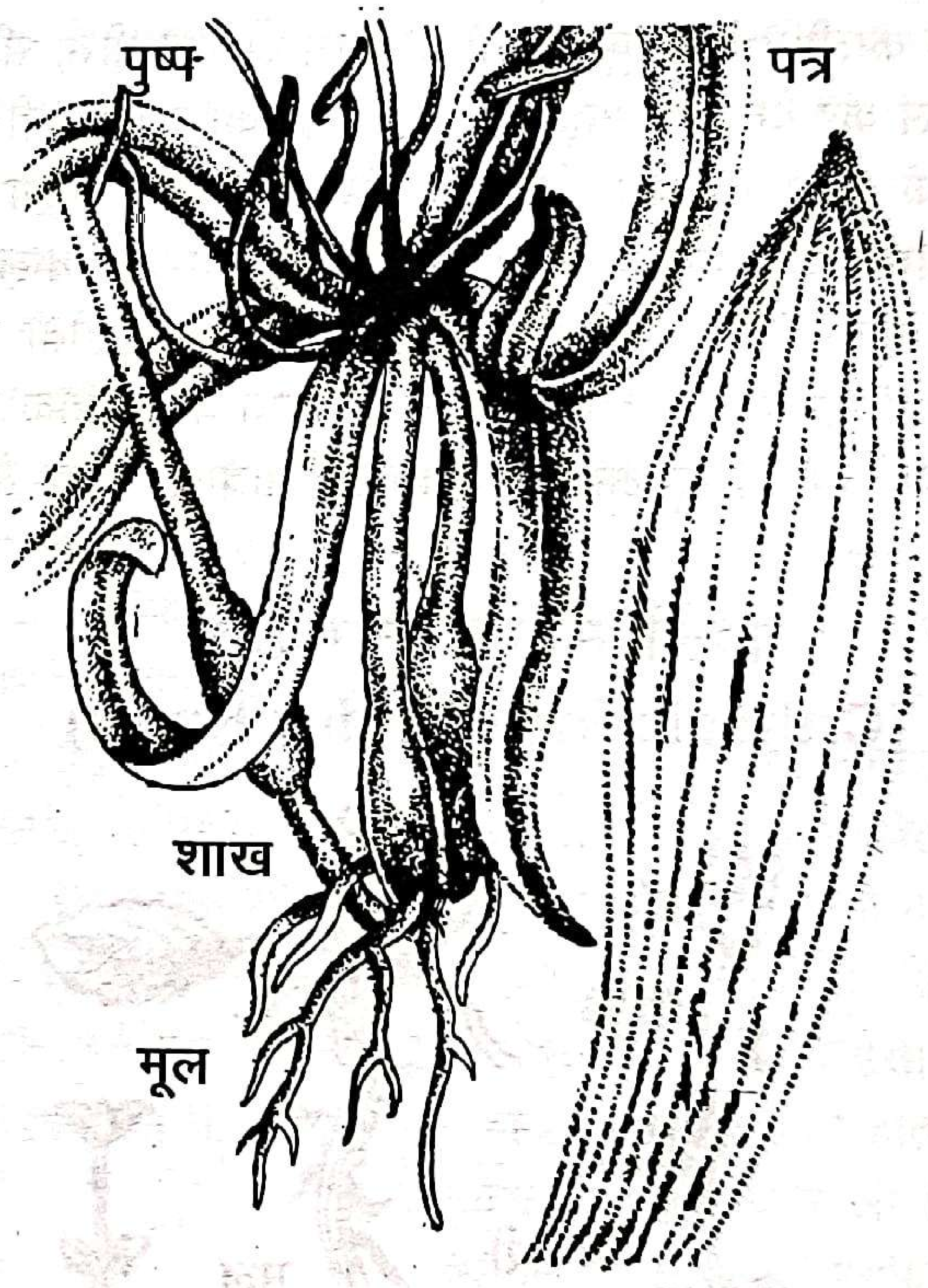

इस तुलसी कुल (Labiatae) के लगभग 6 इंच से 1 फुट तक ऊँचे क्षुप की शाखायें चपटी; पत्र–पुदीना के पत्र जैसे छोटे–छोटे 1 से 1½ इंच लम्बे, आरी की तरह दंतुर किनारे वाले, काली जीरी के समान गन्ध वाले; पुष्प–तुलसी के फूल जैसे मंजरी में, श्वेत, हलके गुलाबी वर्ण के होते हैं। बीज–उक्त मंजरी में ही इसके बीज राई से भी छोटे, मटियाले रंग के, स्वाद में कडुवे, चरपरे होते हैं। इसके पौधे प्रायः वन तुलसी के पौधे जैसे होते हैं। किन्तु इसमें उसके जैसी उग्रगन्ध नहीं होती।

इसके क्षुप भारतवर्ष में प्रायः सर्वत्र नदी नालों के

1. खेद है कि अभी तक यह प्रभावशाली बूटी अनिर्णीत है, संदिग्ध है। भिन्न–भिन्न बूटियों को नागदमन या नागदौन माना गया है। कई लोग जिसे नागदमनी मानते हैं, उसका वर्णन यहां प्रथम देकर, पश्चात् नागदमनी नं0 2 के प्रकरण में हमारी मानी हुई का वर्णन करेंगे। अन्यों की मानी हुई नागदमनी का संक्षिप्त वर्णन इसी प्रकरण में ऊपर के नोट में देखिये। कुछ लोग सुदर्शन (सुखदर्शन) बूटी को नागदौन मानते हैं, उसका वर्णन यथा स्थान सुदर्शन के प्रकरण में देखिये।

किनारे, पहाड़ों एवं कंकरीली भूमि में तथा कंटीली झाड़ियों में पाये जाते हैं। ये वर्षा के प्रारम्भ में ही पैदा होते हैं और श्रावण भाद्रपद में फूलते फलते हैं।

नाम :

सं0—देवमंजरी, हि0—काली नगदी, नगदी बूटी, निगन्द बावरी, अजगुर हैं।

गुणधर्म व प्रयोग :

उष्ण, रूक्ष, कफ पित्तहर, विबन्ध भेदक, कृमि नाशक, रक्त शोधक, कुष्ठ नाशक, विषों का अगद, श्वयथु विलयन, चातुर्थिक ज्वर नाशक है। कुष्ठ, पांडु, शोथ, फोड़े, फुंसी, दद्रु, किलास आदि रक्त विकार जन्य रोगों में रक्त प्रसादन के लिए इसका उपयोग किया जाता है। इसका फाण्ट बनाकर, उसके ऊपर का निथरा हुआ पानी लेकर बारीक किए हुए कालीमिर्च के कुछ दानों का प्रक्षेप देकर पिलाते हैं; या कालीमिर्च के कुछ दानों के साथ जल में पीस, सीरा निकाल कर देते हैं। चातुर्थिक ज्वर में इसका चूर्ण बकरी के दूध के साथ देते हैं। किलास और अर्श जन्य शोथ में कालीमिर्च के दानों के साथ पीसकर पिलाते हैं। किलास (श्वेत कुष्ठ) में दीर्घकाल पर्यन्त सेवन से लाभ होता है। कहते हैं कि इसके निरन्तर सेवन से मनुष्य वानस्पतिक एवं प्राणिज विषों से सुरक्षित हो जाता है। मात्रा 7 माशा से 1 तोला तक।

काली नगदी (नागदौन)
(Crthosiphon Pallidus Royle)

श्री उदयलाल जी महात्मा का निजी अनुभव है कि रक्तशुद्धि के लिए यह एक सर्वश्रेष्ठ औषधि है। इससे रक्त विकार, उपदंशजन्य विकार तथा अनेक प्रकार के चर्म रोग सहज ही दूर हो जाते हैं। इसका चूर्ण 1 तोला काली मिर्च 5 दाने इन दोनों को मिट्टी के नूतन पात्र में भिगोकर प्रातः सायं सिल पर भांग की तरह घोंट, 5 तोला पानी में छानकर पिलावें। 7 दिन तक। अधिक बढ़ी हुई व्याधि में 25 दिन तक पिलावें। पथ्य में—लौका अलोणा, गेहूँ का फुलका, मूँग की दाल के साथ या गौदुग्ध में थोड़ी शक्कर मिला उसमें खावें। यह बूटी रक्त दूषित व्याधियों को अवश्य साफ कर देती है, अनुभूत है। राजस्थान की जनता रक्त विकृति में इसी बूटी की शरण लेकर रोग निवृत्ति करती है।

नोट नं0 3— कुछ लोग अपामार्ग कुल (Amaranthaceae) के प्युपेलिया लेप्पासिया (Pupalia Lappacea Mog) को नागदमनी मानते हैं। श्री ठा0 बलवन्तसिंह जी ने 'बिहार की वनस्पतियां' नामक पुस्तक में इसका उल्लेख किया है। बिहार में यह मुंगेर, पलामू, संथाल परगना आदि स्थानों में विशेषतः पथरीली भूमि में होती है। इसके गुल्मक रोमश, शाखाएं कमजोर; पत्र—रोमश, अभिमुख, लट्वाकार आयताकार या प्रासवत् 1—4 इंच लम्बे; फल गुच्छ—मुण्डकाकार, 5 इंच व्यास के एवं उस पर टेढ़े सूक्ष्म कांटे होते हैं, जिससे सम्पर्क होने पर ये कपड़ों में चिपट जाते हैं। इसके गुणधर्म में इसे कुछ लोगों ने सर्प विष पर उपयोगी माना है।

नोट नं0 4— श्री ठा0 बलवन्तसिंह जी अपनी वनौषधि दर्शिका में चित्रा नामक बूटी को नागदौन तथा लेटिन नाम (Stapyea Emodi. wall) स्टेफिया एमोडी देते हुए लिखते हैं कि इसके बड़े—बड़े क्षुप होते हैं। छाल पर श्वेत व भूरी रेखाओं का जाल सा बना होता है। पत्तियां 3—3 पत्रकों की होती हैं। ये क्षुप 5 से 9 हजार फुट की ऊँचाई पर छायादार नालों में होते हैं। ऐसा कहा जाता है कि इसकी जो छड़ियां रविवार को लाकर निकाली जाती हैं तथा जिनमें लोहा नहीं लगाया जाता, उसके पास सर्प नहीं आते।

नोट नं0 5— कुछ लोग इसरमूल (Aristylochia Indica) को जिसके मूल में कन्द नहीं होता तथा केवल क्षुपदार लम्बी—लम्बी लता रूप में होता है। उसी को भ्रमवश नागदमनी मानते हैं। प्रथम भगा में ईसरमूल का प्रकरण देखिये।

कोई—कोई धवल बरुआ को नागदमनी कहते हैं। सर्पगन्धा का प्रकरण देखें। अस्तु, अब हम प्रस्तुत प्रसंगों की नागदमनी के नाम, गुणधर्मादि का वर्णन करते हैं।

नाम :

सं0—नागदमनी (नागजातीय सर्पों के विष को दमन करने से), विषापहा, नागपुष्पी, नागपत्रा, महायोगेश्वरी (हर

समय, ग्रीष्म के प्रचण्ड आतप में भी हरी भरी रहने से), बलामोटा है। हि0—नागदमनी, नागदौन, पिंड़ार। म0—नागदवन, नागिन या पाता। गु0—नागदमन। बं0—बड़कानूर, नागदौन। अं0—पायसन बल्व (Poison bulb), ले0—क्रिनम एसियाटिकम, क्रि0 टाक्सिकेरियम (C. Toxicarium); क्रि0 डेफ्लेक्सम (C. Deflezum), क्रि0 लेटिफोलियम (C. Latifolium)।

इसमें लायसोरिन (Lycorin) नामक एक तत्व पाया जाता है।

प्रयोज्यांग—मूल (कन्द) और पत्र।

गुणधर्म व प्रयोग :

लघु, तिक्त, कटु, तिक्त, कफ शामक, सादक, वामक, मूत्रल तथा ब्रण, उदरवात, ज्वर, कृमिरोग, प्रदाह, कास, श्वास, योनिरोग, मूत्ररोग, अर्बुद, रक्तविकार, दन्तशूल, प्लीहा वृद्धि, जालगर्दभ (एक प्रकार का विस रोग), सर्प विष, ग्रहबाधा, राक्षस बाधा आदि में प्रयुक्त होता है।

कन्द की क्रिया जंगली प्याज या इपिकाक के समान होती है। अल्प मात्रा में स्वेदल तथा कफ निस्सारक है। बड़ी मात्रा में यह सौम्य एवं उत्तम वामक है, इससे किसी प्रकार की बेचैनी, उदरपीड़ा या शैथिल्य नहीं होने पाता।

ताजे कन्द के टुकड़े कर औषधि कार्यार्थ शुष्क कर सुरक्षित रखते हैं।

(1) विष निवारणार्थ— सर्व प्रकार के विषों पर तुरन्त ही कन्द का रस पिलाते या इसके शुष्क टुकड़ों को पानी में घिसकर पिलाते हैं। वमन द्वारा विष निकल जाता है। सर्पविष पर—मूल या कन्द 1 माशा की मात्रा में 5 दाने कालीमिर्च के साथ पीस छानकर बार—बार पिलाते हैं या इसका रस 1—3 तो0 की मात्रा में 2—1 घण्टे से 3—4 बार नलिका डालकर रस को उदर में पहुंचाते हैं। अथवा इसके रस में 1 दाना श्वेत गुंजा पीसकर प्रयुक्त करते हैं।

(2) तमक श्वास पर—कन्द का चूर्ण 3 माशा तक शहद के साथ चटावें। अथवा—इसके 1 माशा चूर्ण में समभाग गुड़ मिला धूम्रपान करावें। ½ घण्टे में तमकश्वास का अवरोध हो जाता है। —वैद्य दारोगाप्रसाद जी मिश्र

(धन्वन्तरि के गुप्त सिद्ध प्रयोगांक से)

पत्र—मूत्रकृच्छ में—पत्र रस को मिश्री की चाशनी के साथ सेवन कराते हैं। योनिरोग में पत्र के क्वाथ से योनि प्रक्षालन करते हैं। दाद पर—पत्र रस में नमक मिला धूप में थोड़ा गरम कर लेप करते हैं। शूल, प्लीहा, उदर रोग, आध्मान पर— पत्र रस में सेंधानमक मिला पिलाते हैं। बालतोड़, विद्रधि, विसर्प तथा अन्य चर्मरोगों पर और नारू पर—पत्तों पर तैल चुपड़ कर, गरम कर बांधते हैं। इसके प्रयोग से ब्रणों में राध नहीं पड़ने पाती। मच्छरों को भगाने के लिये—पत्तों को जलाकर धुआं करते हैं। पत्तों को कुछ कुचल कर पशुशाला में लटका देने से दूषित कीटाणुओं का प्रवेश नहीं होने पाता। कृमि रोग पर—पत्र रस की कुछ बून्दें शक्कर मिलाकर देते हैं।

(3) बालकों के कफ प्रकोप जन्य डिब्बा, पसली चलने आदि विकारों पर—पत्तों को थोड़ा गरम कर, रस निचोड़ कर उसमें बहुत थोड़ा शहद मिला पिलाने से सहज ही में वमन द्वारा कफ निकल जाता है तथा तज्जन्य विकार दूर हो जाते हैं।

(4) उंगलीपाक (Whitlow) पर— उंगली में शूल जैसा तीव्र वेदनायुक्त शोथ हो तो पत्तों को पीस कर थोड़ा रेंड़ी तैल मिला गरम कर पोल्टीस की तरह बांधने से वेदना शमन होती है। यदि पकने पर हो, तो शीघ्र ही पक कर फूट जाता है, तथा भीतर का दूषित विकार निकल जाता है। यही प्रयोग क्रोष्टुकशीर्ष वात एवं रक्तप्रकोपजन्य अति पीड़ायुक्त श्रृंगाल मस्तक जैसा जानुसंधि में उत्पन्न शोथ (Inflamed knee), पीड़ा, शोथयुक्त अर्श के मस्से तथा नहरुआ पर भी किया जाता है। ब्रण को पकाने के लिये पत्तों को पीस, आंवाहल्दी व नमक मिलाकर बाँधते हैं। ब्रणपूरणार्थ पत्ररस के साथ तैल मिला पकाकर मोम मिला मलहम बनाकर लगाते हैं।

(5) कटिवेदना पर—पत्तों पर रेंड़ी तैल चुपड़कर गरमकर कमर पर बाँधने से कमर का दर्द दूर होता है।

(6) कर्णशूल में—पत्तों को गरम कर रस निचोड़ कर थोड़ा नमक मिला कान में डालने से शीघ्र ही लाभ होता है।

(7) सगर्भा स्त्री की कटि वेदना पर—कभी—कभी गर्भवती स्त्री की कमर में एक प्रकार की वेदना होती है, जिसके कारण उसे एक पैर लचका कर चलना पड़ता है। ऐसी दशा में इसके पत्र में गुड़ लगाकर बांधने से शीघ्र लाभ होता है।

—श्री राजवैद्य पं0 रामगोपाल जी मिश्र

(धन्वन्तरि के बूटी चित्रांक से)

(8) पशुरोग पर—पशु के छोटे बच्चों के पेट में पटार (एक प्रकार के लम्बे कृमि) पैदा हो जाने पर इसका पत्र—स्वरस छाछ या दूध के साथ पिलावें। पशु के शरीर में लेड़या (कीड़े) पड़ जाने पर पत्तों का काढ़ा करके लगावें।

—श्री पं0 रामगोपाल जी मिश्र

नोट—मात्रा—मूल या कन्द का रस 4 माशे से 16 माशे या 2 तो0 तक। वमनार्थ—कन्द का ताजा रस 1—2 तोला कन्द का कल्प 1—3 माशा। शर्बत 8 माशा तक बालकों के कफ प्रकोप में देते हैं।

शुष्क मूल की मात्रा दो गुनी लेते हैं।

नागदमनी नं० 2[1] (Redilanahus Tithimaloi ?)

यह एक प्रकार का थूहर जाति (Euphorbiaceae) का क्षुप है। इसके क्षुप 3–4 फुट ऊँचे, ऊपर को ही सीधे गांठदार, बढ़ते हैं। कांड व शाखायें कुछ टेढ़ी मेढ़ी सी, गांठदार गहरे हरितवर्ण की, शाखायें उंगली जैसी मोटी अग्रभाग में कुछ पतली, पत्र–प्रायः प्रत्येक गांठ पर, सर्पफणाकार 2½ इंच तक चौड़े, 3 इंच तक लम्बे, गहरे रंग के, मोटे दलदार मांसल, तोड़ने से तड़कने वाले, पत्र–वृन्त बहुत ही छोटा, पुष्प वर्षाकाल में नन्हा सा सिन्दूर जैसा लाल रंग का, धाय की कली के समान होता है। पुष्प प्रायः विकसित नहीं होता, उसी के अन्दर इसके छोटे–छोटे बीज होते हैं। पत्र और डंठल को तोड़ने से दूध निकलता है। सर्प प्रायः इस क्षुप के निकट नहीं आता। कहा जाता है कि सर्प से दंशित नेवला इसी की छाल तथा पत्रों को बार–बार खाकर सर्प को पराजित करता है।

इसके क्षुप कुछ कंकरीली आर्द्र भूमि में नैसर्गिक तथा बाग–बगीचों में लगाये जाते हैं। इसे प्रायः घरों में भी सर्प से बचाव के लिए गमलों में या बाहर के आवार की भूमि में लगाते हैं।

इसे नागदवन, निर्विषी एवं ग्रामीण भाषा में नगहा कहते हैं। इसका लेटिन नाम संदिग्ध है, निश्चित नहीं।

गुणधर्म :

प्रायः उक्त नागदमनी नं0 1 के समान हैं।

शोथ पर इसे कुचलकर निचोड़ कर निकाले हुए रस में गेरू और किंचित् अफीम मिला, गरम कर लेप करते हैं।

कर्ण विकार में–इसका स्वरस गरम कर कान में टपकाने से कर्णस्राव, कर्णनाद शीघ्र दूर होता है। दन्त कीट में इसके रस में रूई की फुरेरी भिगोकर दाढ़ में दबाने से कीट नष्ट होकर दर्द दूर होता है।

(1) सर्प विष पर–सर्पदंश के बाद शीघ्र ही इसके 3 पत्र और 5 दाने काली मिर्च पीसकर पिलाने से विष नहीं बढ़ने पाता तथा इसी प्रकार 45 मात्रायें देने से विष बिल्कुल नष्ट हो जाता है। यदि सर्वांग में विष फैल गया हो तो इसका 3 माशा दूध पिला देने से वमन, रेचन द्वारा विष निकल जाता है तथा इसकी जड़ और पुराना गुड़ 1–1 तोला काली कमली (जो भेड़ की ऊन बनी हो) की भस्म 3 माशा तथा काली मिर्च 1 माशा इनको पानी के साथ महीन पीस लें (पानी 5½ तोला से अधिक नहीं होना चाहिये) फिर इसमें 3 तोला घृत मिलाकर पिलावें बैठे हुए दांत और मूर्च्छा 1 मात्रा में दूर हो जायेगी। किन्तु 4–5 मात्रा और पिलावें तो विष बिल्कुल नष्ट हो जाता है ध्यान रहे कि जितना विष घटता जाय, तदनुसार दवा की मात्रा भी कम करते जावें। अथवा–

इसके पत्र 5 नग, तथा कालीमिर्च 3 माशा दोनों को महीन पीस 5 तोले गौ घृत मिला दो मात्रा देने से शीघ्र लाभ होता है। —श्री पं0 अनन्तदेव मिश्र वैद्य शास्त्री

नागदमनी नं० 2

(2) श्वान, श्रृंगाल आदि के विष पर–कुत्ते या सियार के काटे हुये स्थान पर शीघ्र ही इसका दूध लगा या भर देवें, और नित्य इसकी 2 पत्ती 7 काली मिर्चों को पीसकर प्रातः निहार मुख, थोड़े जल में घोट छानकर पिलावें। ऊपर से गरम जल पिलावें (उक्त पीने की दवा में यथारुचि शहद भी मिला सकते हैं)। पूर्ण लाभ होता है।

मूषक विष पर–इसकी पत्ती पीस कर लगावें तथा

1. खेद है कि बहुत कुछ छानबीन करने पर भी इसका उचित लेटिन नाम हमें नहीं प्राप्त हुआ शास्त्रोक्त लेटिन नाम राजवैद्य ठा0 हरदेव बख्श सिंह वर्मा, बरबन, हरदोई निवासी ने अपने लेख बूटी दर्पण में प्रकाशित किया था। इस बूटी का विशेष वर्णन श्री पं0 अनन्त देव जी मिश्र वैद्यराज शास्त्री ने धन्वन्तरि के वर्ष 10 अंक 11 में प्रकाशित किया है। यह बूटी प्रायः सर्वत्र सुलभता से प्राप्त होती है। हमने भी इसका अनुभव किया है। मिश्र जी ने भूल से इसका लेटिन नाम आर्टमेसिया व्लोरिस (Artemesia Vulgaris) लिख दिया है। इस लेटिन नाम की बूटी का वर्णन आगे नागदमनी नं0 3 में देखिये।

उसी के क्वाथ से प्रक्षालन करते रहें।

बिच्छू, शहद की मक्खी, बर्र आदि कोई भी जहरीले जन्तु के काटने पर इसका दूध लगा देने से तुरन्त लाभ होता है। यदि बिच्छू के ऊपर इसका दूध टपका दिया जाय तो वह शीघ्र ही मर जाता है।

मकड़ी (जूता) के विष पर इसका दूध लगाने और पत्तों को पीसकर लेप करने से शीघ्र आराम होता है।

—श्री पं0 अनन्तदेव जी मिश्र वैद्यशास्त्री

निम्नांकित प्रयोग भी सब उक्त मिश्र जी के ही अनुभूत हैं।

(3) ब्रणों पर—नये उठते हुए ब्रण को दवा देने के लिए, इसके पत्र पर घृत चुपड़ कर, आग पर थोड़ा गरम कर फोड़े पर पांच तहकर के बांध देने से फोड़ा बैठ जावेगा। किन्तु ध्यान रहे यह उपचार फोड़े के उठते ही प्रथम या दूसरे दिन करने से ही वह बैठ जाता है। अधिक दिन के बाद ब्रण के स्थान का रक्त विशेष दूषित हो जाने पर ब्रण नहीं बैठ सकता।

ब्रण को पकाने के लिए इसके पत्र या जड़ को पीस कर उसमें रेहू (रेहु मृतिका जो धोबी कपड़ों में लगाते हैं) मिला गरम कर दिन में दो बार लेप करें। ब्रण शीघ्र पक कर फूट जाता है।

घाव भरने के लिए—इसके पत्र 5 तोला लेकर पीस कर उसमें 5 तो0 अलसी का तैल मिला, मंद आंच पर पकावें। दवा जल कर काली हो जाने पर उतार कर घोंट देवें या मोम 4 माशा डाल दें तो मरहम बन जावेगा। प्रथम इसी के पत्र क्वाथ से घाव को धोकर तैल या मलहम को लगावें। शीघ्र आराम होता है, ब्रण को शुद्ध कर भर लाता है।

किसी भी प्रकार का घाव हो इसका रस लगाने से या उक्त मलहम को लगाने से घाव शीघ्र पूरित हो जाता है।

घाव के कृमिनाशार्थ—इसके दूध में रुई भिगोकर घाव में भर दें, या दूध ही भर दें,कृमि नष्ट हो जावेंगे।

(4) कृमि रोग पर—इसके 20 तोला स्वरस में काला नमक, काला जीरा और बायबिडंग 2—2 तोला मिला आग पर इतना पकावें कि लपसी के समान गाढ़ा हो जाय, पुनः सिल पर बारीक पीस झरबेर जैसी गोलियां बना लें। 1—1 गोली दिन में 3 बार पलाश पापड़ा (ढ़ाक के बीज) के क्वाथ से दें। शर्तिया कृमि नष्ट हो जाते हैं।

अथवा—इसके पत्र और गुड़ 3—3 तोला तथा अजवायन 1 तोला सबको एकत्र महीन पीस झरबेर जैसी गोली बना रक्खें। प्रातः सायं 1—1 गोली गरम जल से 7 दिन सेवन करें पेट के कृमि मरकर निकल जावेंगे।

(5) उदर रोग पर—इसके प्रयोग से प्रत्येक उदर व्याधि में कुछ लाभ अवश्य होता है, किन्तु अजीर्ण, अफरा, प्लीहा, गुल्म, यकृत, शूल, सर्व प्रकार के कठोदर, कृमि आदि में पूर्ण लाभ होता है।

अजीर्ण में—इसका स्वरस 1 तोला, कालानमक, जवाखार 1—1 माशा और हींग भुनी हुई 3 रत्ती का मिश्रण (यह 1 मात्रा है) दिन में दो बार सेवन से शीघ्र लाभ होता है।

अफरा हो, तो—इसके 1 तोला स्वरस में हरीतकी 1 नग, हींग भुनी 3 रत्ती का चूर्ण मिला तथा उसमें शहद मिला पीने से लाभ होता है।

प्लीहा में—इसके पत्र 100 नग, पांचों नमक 25 तो0 लेकर प्रथम नमक में इसका दूध 15 तोला मिला, एक हांड़ी में पत्तों की तह लगा—लगाकर उस पर उक्त नमक डाल—डाल कर हांडी बन्द कर गजपुट में फूंक दें। स्वांग शीतल हो जाने पर निकाल कर पीस कर रख लें। मात्रा 1 माशा से 3 माशा तक, कुमारी (ग्वारपाठा) के स्वरस और शहद के साथ प्रातःसांय सेवन से प्लीहा रोग शान्त होता है तथा अजीर्ण, अफरा, गुल्म, मन्दाग्नि, शूल आदि नष्ट होते हैं।

उदरशूल पर—इसके पत्र 10 नग, हींग असली 1 माशा, कालीमिर्च चूर्ण 2 माशा लेकर पत्तों की तह करें और बीच—बीच में हींग व कालीमिर्च डाल—डाल कर कई पर्त करें। ऊपर से मोटा वस्त्र गीला कर लपेट दें, उसके ऊपर बांबी की मिट्टी (बल्मीक मृतिका) का दो अंगुल मोटा लेप कर गोला सा बनावें। गोला सूख जाने पर अरने कण्डों की निर्धूम आग में डालकर तपावें। ऊपर की मिट्टी लाल हो जाने पर उसे निकाल डालें तथा पत्तों को निचोड़ कर अर्क पिलावें। शूल शीघ्र ही बन्द हो जाता है। यदि यह पुटपाक शीघ्र न बन सके, तो इसके पत्र स्वरस 2 तोला में हींग, मिर्च और नमक मिला गरम कर पिलावें, तो भी लाभ होता है।

कठोदर—जिसमें उदर काठ के समान कठोर हो जाता है—इसका स्वरस और ग्वारपाठे का स्वरस 40—40 तोला और उत्तम मधु 20 तोला सबको मिला बोतलों में भर रक्खें। मात्रा—1 तोला दिन में 3 बार देवें तथा पूरे पेट पर इसके पत्तों पर रेंड़ी तैल चुपड़ कर गरम कर बांधने से लाभ होता है।

(6) वात रोग जो बहुत दिन का न हो, उस पर—इसका स्वरस और गोमूत्र दोनों ½-½ सेर लेकर एकत्र कर उसमें सरसों तैल व रेंड़ी तैल 20—20 तोला मिला मन्द आंच पर तैल सिद्ध करलें। इस तैल में कपूर 2 माशा मिला मालिश करने से नूतन वात का दर्द नष्ट होता है।

(7) बाल शोष (सूखा रोग) पर—यह उत्तम कृमि

नाशक होने से शीघ्र लाभकारी हैं बालक की रीढ़ (पृष्ठास्थि) में जो कीड़े हो जाते हैं उन्हें यह शीघ्र नष्ट कर देती है। इसको गरम कर रीढ़ पर मालिश करें तथा पत्तों को गरम कर पूरी रीढ़ पर बांधने से आराम हो जाता है और 2–4 बूंदें इसका रस नित्य पिला दिया करें तो और भी अच्छा है।

(8) योनि रोग में–इसका स्वरस, गौदुग्ध और काले तिल का तैल तीनों ½- ½ सेर एकत्र कर मन्द आंच पर पका तैल सिद्ध करलें। इस तैल का फाहा योनि में रखने से योनिकन्द, दाह, शूल, शोथ, घाव शीघ्र आराम होते हैं।

(9) पशु रोग पर (अश्व शूल पर)– इसके पत्र 12 नग, कालीमिर्च के 12 दाने और गुड़ पुराना 5 तोला सबको पीसकर पिलाने से घोड़े का शूल तुरन्त नष्ट होता है।

पड़रों के पटेरे पर–भैंस के छोटे बच्चों के पेट में कीड़े (हिरोहे) पड़ गये हों, तो इसका स्वरस 10 तोला सनई के बीजों का चूर्ण 2 तोला और पुराना गुड़ 1½ तोला सबको मिलाकर पिलाने से पटेरे मर कर मलमार्ग से गिर जाते हैं।

पशु के जूयें दूर करने के लिये–इसके पत्र डंठल सहित 1 सेर लेकर 5 सेर पानी में क्वाथ करें। 3 सेर शेष रहने पर उतार कर पशु के सर्वांग में मलें। ऐसा 2–3 बार करने से जूं नष्ट हो जाते हैं।

पशु खांग (पाद दारिया) में–इसका स्वरस लगाने से घाव पूरित हो जाते हैं। यदि कीड़े पड़े हों तो वे नष्ट हो जाते हैं।

विशिष्ट योग :

(1) बंग भस्म–शुद्ध बंग (रांगा) के कंटकबेधी पत्र बना, 1–1 इंच के टुकड़े कर, एक बड़े कंड़े पर इस नागदमनी की लुगदी बिछाकर उस पर टुकड़े अलग–अलग धरकर पुनः लुगदी से आच्छादित कर ऊपर अरने कंड़े धरकर फूंक दें। अग्नि शीतल होने पर सावधानी से भस्म उठाकर पीस लें। उत्तम भस्म बनेगी। यह कास, श्वास, प्रमेहादि में गुणकारी है।

(2) लोहाभस्म–शुद्ध लौह के बारीक कण (चूर्ण) को इसके दुग्ध में सान (लपेट) कर, शराब संपुट में रख, गजपुट देवें। ऐसा कई बार करने से सुर्ख रंग की उत्तम लोहभस्म बनती है, जो कमजोरी, श्वास कास, शोथ, पांडु, प्लीहा, गुल्म, उदर रोग एवं त्रिदोषनाशक है।

नागदौना (नागदमनी नं० 3)[1] (Artemisia Vulgaris)

भृंगराज कुल (Compositae) के इसके बहुवर्षायु, झाड़ीदार, सुगंधित क्षुप 2 से 8 फुट ऊँचे, तना या काण्ड कोमल, किसी का कड़ा रोमयुक्त, अनेक पत्र युक्त एवं दो या अधिक पुष्प वाली शाखों से विभाजित होता है। पत्र–निम्न भाग के पत्र 2–4 इंच लम्बे, 1–2 इंच चौड़े, लट्वाकार, पृष्ठ भाग में रोमश, धूसरवर्ण अधोभाग में श्वेत रोमश तथा कांड के अधोभाग के पत्र छोटे, रेखाकार भालाकार, किनारा अखण्ड या तीन भागों में विभक्त, प्रायः वृन्तरहति होते हैं। पुष्प–लम्बे धूसर या पीले पुष्पखण्ड पर धनिया के पुष्पों जैसे गुच्छों में गुलाबी या श्वेत वर्ण के पुष्प होते हैं। बाहर की ओर स्त्री पुष्प तथा भीतर की ओर उभयलिंग विशिष्ट पुष्प होते हैं। पत्र और पुष्प स्वाद में अति कडुवे होते हैं।

भारत के पूर्व एवं पश्चिम हिमालय के पहाड़ी प्रदेशों में तथा मणिपुर, आबू पहाड़, बंगाल, दक्षिण के पश्चिम घाट आदि अनेक प्रान्तों में एवं सीलोन, एशिया व यूरोप के समशीतोष्ण कटिबन्ध के प्रदेशों में यह नैसर्गिक होता है। कहीं–कहीं बोया भी जाता है।

नाम :

सं0–दमनक, मंचपत्रीं, सुपर्ण, सुगन्धा, नागिनी। हि0–नागदौना, दौना, चित्रा, नागदवन, सेमरी, माढ़जरी। म0–सुरवंद। गु0–नागदवण, झीपटो। बं0–नागदमनी, नागदौन। अं0–इंडियनवर्मबुड़ (Indian worm Wood), लें0–अर्टेमीसिया ह्वलगेरिस।

प्रयोज्यांग–पत्र और पंचांग।

गुणधर्म और प्रयोग :

तिक्त, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, कफ पित्तशामक, दीपन पाचन, आनुलोमिक, संकोच विकास प्रतिबन्धक, रक्तप्रसादक, आर्त्तवजनन, उदर शोधक तथा शूल, ज्वर, योनि दोष, वमन, कृमिरोग आक्षेप आदि में प्रयुक्त होता है। शेष गुण धर्म प्रायः दवना के समान हैं। (देखो तुलसी के प्रकरण में दवना) इसके पंचाग या पत्रों का स्वरस या फाण्ट मासिक धर्म के कष्ट एवं रूकावट पर देते हैं। फाण्ट से भूतोन्माद में भी लाभ होता है। यह अपतंत्रक (हिस्टीरिया) में भी लाभकारी है। क्षुद्रश्वास (हांफनी, श्वास भर जाना) सिर दर्द, आध्मान, आंत्रशूल, उदर कृमि और अजीर्ण में इसके स्वरस, फाण्ट या चूर्ण का सेवन कराते हैं। यकृत विकारों पर पत्र का रस का लेप करते तथा इसके क्वाथ का बफारा देते हैं। खुजली युक्त चर्म रोगों पर इसका रस तथा इसे तैल में पका कर

1. यह नागदमनी नहीं है। इसमें विषनाशक शक्ति नहीं है। किन्तु कई लोगों ने इसे नागदमनी ही नाम दिया है। अतः उनके संतोषार्थ हमने नागदमनी नं0 3 इसे लिख दिया हैं वास्तव में दौना की जो कई जातियां भारत में पाई जाती हैं, उसी जाति का यह एक प्रकार का भारतीय असफसंतीन (इसे भाग 1 में देखिये) है। इसे सुरपर्ण भी कहते हैं।

तैल का मर्दन करते हैं। दूषित ब्रणों पर पत्तों की पुल्टिस बना कर बांधते हैं। कर्णशूल में इसके स्वरस को कान में डालते हैं।

बालकों के लिये यह विशेष हितकारी है। बालकों के कृमि विकार, आध्मान, उदर शूल, कास, प्रतिश्याय में इसका पत्र रस शहद के साथ चटाते हैं।

नागदौना (नागदमनी नं० 3)

(Artemisia Vulgaris Linn.)

इसके पत्र और डंठलों का क्वाथ (या शीत निर्यास) बलकारक है। यह स्नायु मंडल के विकारों के निवारणार्थ; एवं कीटाणुओं के नाशार्थ दिया जाता है। अश्मरी को गलाने के लिये भी इसका शीत निर्यास देते हैं गर्भस्राव प्रतिबन्धक है, तथा प्रसव में सहायक होता है। बालकों के तालुपातन (सिर में तालुस्थान पर गढ़ा पड़ जाना) विकार पर इसके स्वरस को तालु स्थान पर लगाते हैं।

इसके पत्र या कोंपलों का क्वाथ मंदाग्नि नाशक है बालकों की खांसी में यह दिया जाता है। यह क्वाथ निर्बलताजन्य रोगी की ऐंठन या बांयटों पर भी हितकर है। ब्रणों पर इस क्वाथ का बफारा देने से लाभ होता है क्वाथ में दालचीनी का चूर्ण मिला सेवन से उदरशूल दूर होता है।

पत्तों का चूर्ण दूषित ब्रणों पर लगाते हैं। कई प्रकार के चर्म रोगों में इसे तैल में मिला कर लगाते हैं।

इसके पंचांग की भस्म को मक्खन में मिला सर्व प्रकार के घावों पर लगाने से लाभ होता है।

नोट–मात्रा पत्र पंचांग या बीजों का चूर्ण 1½ से 3 माशा, फाण्ट के लिये चूर्ण 6 माशा तक।

इसका अधिक सेवन मस्तिष्क तथा सन्धियों को हानिकारक है हानि निवारणार्थ शहद देते हैं।

नोट–नागनबेल यह एक लता या बेल है। यह इन्दौर, उज्जैन आदि मालवा प्रान्त के पर्वतों पर होती है तथा वहां यह नागन बोल नाम से प्रसिद्ध है, इसकी जड़ बिल्कुल सांप के आकार प्रकार की होती है। कहीं–कहीं इसे ही 'नाग दस' कहते हैं। इसकी जड़ बहुत कड़वी होती है। 1 तो० जड़ को 10 तो० जल में पीसकर छान कर पिलाने से फनवाले, तीव्र विषैले सर्प का जहर दूर हो जाता है। वमन द्वारा विष निकल जाता है। यदि एक बार के पिलाने से विशेष लाभ न हो तो पुनः 6 मा० जड़ को 10 तो० पानी में पीस कर पिलावें वमन होकर सब विष दूर होता है।

–श्री पं० मुरलीधर शर्मा राज वैद्य

नागफनी देखो–थूहर में। नागवला देखो–गगेरन। नागर वेल देखो–ताम्बूल।

नागरमोथा (Cyperus Scariosus)

कर्पूरादि एवं अपने ही मुस्तक कुल[1] (Cyperaceae) के इस प्रधान तृण जातीय बहुवर्षायु 1–3 फुट ऊंचे क्षुप के काण्ड गोल, चिकने, नलाकार; पत्र–लम्बे पतले, रेखाकार घास के जैसे; पुष्प–क्षुप के अग्रभाग से निकली हुई 2–4 फुट ऊंची ऊपर की ओर 10–20 शाखा प्रशाखा युक्त, तिकौनी डंडी पर कुछ श्वेताभ हरे रंग के छोटे–छोटे गुच्छों में आते हैं। फूलों के इधर–उधर लम्बे–लम्बे पत्ते भी होते हैं। फल लम्बे से होते हैं जिनमें गोल अण्डाकार छोटे–छोटे बीज होते हैं। मूल ½-1 इंच साधारण मोटे टेढ़े दबे हुए से काले रंग के जिनके निम्न भाग पर कसेरु जैसी, सुगन्धित ऊपर से काले रंग के भीतर श्वेत ऐसे होते हैं। इन्हीं कन्दों को नागरमोथा कहते हैं। क्षुप का ऊपरी भाग शुष्क हो जाने पर उसे मूल सहित उखाड़ कर के कन्दों को काट लेते हैं।

ये क्षुप प्रायः समस्त भारत के विशेषतः बंगाल व दक्षिण भारत के जलीय एवं आर्द्र प्रदेशों में बारहों मास पाये जाते हैं। वर्षाकाल में ये खूब पनपते हैं।

नोट नं० 1– प्रस्तुत प्रसंग का नागरमोथा विशेषतः पानी से भरे हुए स्थानों में पाये जाने वाला प्रशस्त माना जाता है।[2] इसके कई भेदों में से मुख्य दो भेद हैं– (1) भद्रमुस्तक (C. Rotundus)– इसका कांड 6 से 24 इंच तक

1. इस कुल के क्षुप–तृणसदृश; काण्ड त्रिकोण पर्वरहित पत्र–कृन्त रहित, पुष्प काण्डाग्र पर गुच्छों में छोटे छोटे कुछ हरित वर्ण के होते हैं।
2. अनूपदेशे यज्जातं पुस्तकं तत् प्रशस्यते। तत्रापि मुनिभिः प्रोक्तं वरं नागरमुस्तकम्। (भाव प्र०) अनपू देश, मिश्रित देश (आनूप व जांगल मिश्रित) तथा जांगल देश में उत्पन्न हुआ मोथा क्रमशः उत्तम, मध्यम व अधम होता है। (भै० र०)

का, पत्र– 1/3 इंच तक चौड़े, एक स्थूल शिरा जो आस पास 5–7 सूक्ष्म शिराओं से युक्त एवं पत्राग्र लम्बा होता है। इसके पुष्प दण्ड से 4–10 सलाकाएं निकलती हैं जिनपर रक्ताभ श्वेतमंजरी आती है, जिन पर कुछ रक्ताभ हरितवर्ण के नन्हे–नन्हे पुष्प आते हैं। इसका मूल छोटा, कन्दाकार, 1 इंच के व्यास का काला एवं सूक्ष्म तन्तुओं से युक्त होता है यह कन्द मोटा, कड़ा एवं कुछ गोल एवं अधिक सुगंधित होता है। इसके क्षुप भारत की प्रायः सर्व मैदानी भूमि में पाये जाते हैं। सीलोन में यह बहुत होता है। (2) कैवर्त्तमुस्तक C. Tenniflorus यह प्रायः जल में ही होता है। कन्द छोटा, ग्रंथि युक्त होता है। इसे हिन्दी में केवटी मोथा कहते हैं।

प्रस्तुत प्रसंग के नागर मुस्तक तथा उक्त उसके दो भेदों में गुणधर्म रासायनिक संगठन की दृष्टि से विशेष अन्तर नहीं है। औषधिकार्यार्थ ताजा एवं सुगन्धित मोथा लेना चाहिये।

चरक के तृप्तिघ्न, तृष्णानिग्रहण, लेखनीय, कण्डूघ्न एवं स्तन्य शोधन गणों में तथा सुश्रुत के मुस्तादि व वचादि गणों में इसकी गणना है। भावमिश्र ने कपूरादि वर्ग में इसे लिया है।

नोट नं0 2– गजचरण बूटी– नागरमोथा जैसी ही यह तृण जाति की वनस्पति उत्तर प्रदेश के अनेक स्थानों में पाई जाती है किन्तु इसका आकार व स्वरूप ठीक गजचरण के चिन्हों जैसा दिखाई देने से देहाती लोग इसे हाथी पांव भी कहते हैं। एक वृद्ध विद्वान वैद्य के कथनानुसार यह रुद्रजटा बूटी[1] है।

इसमें नागरमोथे की भांति पतली डण्डी सी निकलती है तथा उसमें ठीक नागरमोथे के जैसे क्षुद्रपुष्पसमूह दृष्टिगोचर होते है। जड़ खोदने पर ज्ञात होता है कि यह नागरमोथे की जाति हैं उसी प्रकार की कन्दस्वरूप जड़ें निकलती हैं। इस कन्दवत् जड़ में सूक्ष्म बाल जैसे रेशे निकलते हैं। खाने में इसकी जड़ सुस्वादु, किंचित कड़वी होती है। खस की तरह सुगन्ध आती है। ऊपर को इसके तृण लम्बे पतले, पनालीदार एवं हरे होते हैं। इस तृण जाति के जत्थे का रंग वर्षा ऋतु के पश्चात् लालिमायुक्त हो जाता है।

इस बूटी के चमत्कारिक प्रयोग निम्नांकित हैं– (1) इसके पंचांग को, मिट्टी के पात्र में बन्द कर आग पर रखकर भस्म बना लें। इस भस्म को शतधौत घृत मिलाकर लगाने से विसर्प रोग और जहरवात (बच्चों का सुर्ख वादा सिर की फुन्सियां) और हर प्रकार के घाव शर्तिया अच्छे होते हैं। (2) त्रिफलादि तैल की दवाओं के साथ इस बूटी की जड़ व मेंहदी की पत्ती व फल मिला कर तैल पकाकर लगाने से उपदंश के घाव तथा अन्य चर्म रोग ठीक होते हैं। (3) इसकी जड़ को गोतक्र में पीस कर मोटा लेप करने से बगल में होने वाली कखबारी (बद) ठीक हो जाती है।

मोथा (नागर मोथा)

(Cyperus Rotundus Linn.)

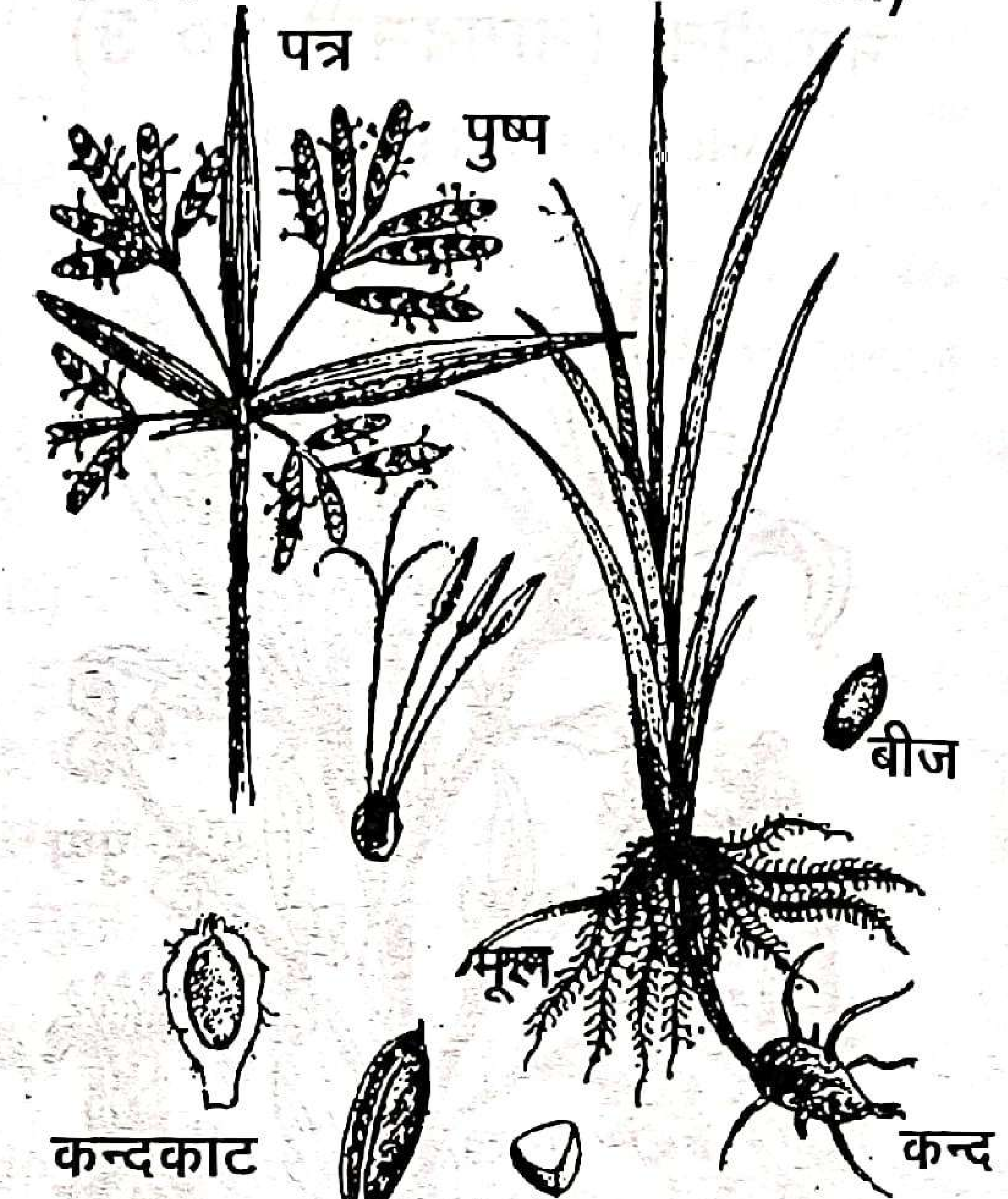

यह बूटी विषैली नहीं है। शीत गुण प्रधान अवश्य है। इसे पानी में पीस छानकर पीते ही तुरन्त सरदी (जुकाम) हो जाती है। इस बूटी का अर्क निकालकर भी रक्त विकार के रोगों में काम में लाया जाता है। तैल में डालने से उसका रंग लाल और सुगंधित हो जाता है।

—वैद्य महावीर प्रसाद शर्मा, एकड़ला, फतेहपुर

(बूटी दर्पण के लेख से साभार)

नोट नं0 3– गोंद पटेर–कोई कोई भ्रमवश गोंद पटेर व एरक (एरका) को ही नागरमोथा या भद्रमोथा मानते हैं तथा इसे मोथीतृण कहते हैं। भावप्रकाश आदि निघण्टुओं में भद्रमोथा के पर्यायवाची नामों में 'गुन्द्रा' शब्द आया है इसी से शायद यह भ्रम हो गया है गोद पटेर का वर्णन इस ग्रन्थ के प्रथम भाग में 'एरक' के प्रकरण में देखिये।

नाम :

सं0–मुस्तक, मुस्त, वारिद (मेघ के सर्व पर्यायवाची नाम इसे दिये जाते हैं), कुरुविन्द भद्रमोथा इ0। हि0–नागरमोथा, मोथा। म0–नागरमोथा, लवाला। गु0–मोथ, नागरमोथा, चीजा। बं0–मुता, मुथा, मुस्ता, नागरमुस्ता। अं0–नटग्रास (Nutgrass), इंडियन सायपरस (Indian cyperus)। ले0–साइपरस स्केरिओसस, सा. रोटंडस (C. Rotundus) सा0 पर्टेनुइस (C. Pertenuis)।

1. 'रुद्रजटा' ईसरमूल को भी कहते हैं। (ईसरमूल का विवरण भाग 1 में देखें) किन्तु यह ईसरमूल नहीं है। ईसरमूल उष्णवीर्य होता है, यह शीतवीर्य मालूम होती है।

रासायनिक संगठन :

इसके कन्द या मूल में एक उड़नशील सुगंधित तैल तथा वसा, शर्करा, गोंद, कार्बोहाइड्रेट। अल्ब्युमिन सदृश पदार्थ एवं कुछ क्षार पाया जाता है। इसका सुगंधित तैल केशों के लिए बल्य है तथा कई औषधीय तैलों में यह मिलाया जाता है।

प्रयोज्यांग—मूल (कन्द)।

गुणधर्म व प्रयोग :

लघु, रूक्ष, कटु, तिक्त, कषाय, कटु—विपाक, शीतवीर्य, कफ पित्त शामक, दीपन, पाचन, वातानुलोमक, ग्राही, तृष्णानिग्रहण, हृद्य, मेध्य, रक्त प्रसादक, नाड़ियों के लिए बल्य, मूत्रल, ब्रणरोपक, गर्भाशय संकोचक (या किंचित् उत्तेजक) केशवर्धक, स्तन्य जनन, स्तन्य—शोधन, आर्तव जनन, स्वेदल, त्वग्दोष निवारक, कृमिघ्न, कफघ्न, विषघ्न और ज्वरघ्न है तथा अरूचि, वमन, अग्निमांद्य अजीर्ण, अतिसार, संग्रहणी, तृष्णा, कृमिरोग (कृमि में इसे बड़ी मात्रा में देना पड़ता है), रक्तविकार, कास, श्वास मूत्र कृच्छ, रजोरोध, सूतिका रोग, स्तन्यविकार, कण्डू पामादि चर्मरोग, दौर्बल्य आदि में तथा अनेक विषों में इसका प्रयोग किया जाता है।

कुपचन, वमन, अतिसारादि आमाशय एवं आंत्र के विकारों में इसका बहुत प्रयोग किया जाता है स्वेदल, मूत्रल एवं उत्तेजक होने से यह ज्वर, ज्वरातिसार पित्तकफ ज्वरों में उपयोगी है। यह अपने स्वेदल आदि गुणों से शारीरिक स्रोतों को दूषित दोषों से शुद्ध कर ज्वर आदि की दशा में लाभ पहुंचाता है तथा मंदाग्नि, अरुचि आदि को भी दूर कर देता है। एतदर्थ इसका चूर्ण या फाण्ट दिया जाता है। विसूचिका और मदात्यय में तृषा शान्त्यर्थ इसका शीत निर्यास पिलाते हैं। दुग्धवृद्धि के लिये इसे जल के साथ पीसकर स्तनों पर लेप करते हैं। नेत्रब्रण में इसे घृत में भून कर व पीस कर लगाते हैं। नेत्र की फूली तथा रात्रयान्ध्य (रतौंधी) में इसे बकरे के मूत्र में पीसकर वर्त्ती बना आंखों में आंजते हैं। ब्रणों पर—इसकी ताजी जड़ को घिस कर गोघृत मिला कर लगाते हैं। खाज, खुजली में इसका लेप करते हैं। मस्तिष्क दौर्बल्य तथा अपस्मार में इसका कल्क गोदुग्ध के साथ सेवन कराया जाता है। कामला में इसके रस का नस्य देते हैं। गले में जौंक चिपक गई हो तो इसे मुख में रख चाबने से निकल जाती है।

नोट—इसमें इतने गुण होते हुए भी इसका उपयोग स्वतन्त्र रूप से बहुत कम किया जाता है। अन्य सहायक द्रव्यों के साथ ही विकार विशेषों में इसका प्रयोग किया जाता है।

शोधन—यद्यपि इसके शोधन की विशेष आवश्यकता नहीं है तथापि निम्न विधि से शुद्ध किया हुआ मोथा वात व्याधियों में अधिक उपकारक होता है तथा कंठ के कोई विकार नहीं होने पाते। भैषज्य रत्नावली के वात—व्याध्यधिकार में इसकी शुद्धि इस प्रकार दी है—

मोथे के छोटे—छोटे टुकड़े कर कांजी में 3 दिन रख पानी से धो पंचपल्लव क्वाथ से स्वेदन कर गुड़ मिश्रित जल से सेचन कर धूप में सुखाकर भाड़ में भून कर चूर्णित कर लें। पश्चात् बकरी के मूत्र एवं सहिंजन क्वाथ से भावना देकर अन्त में चमेली आदि फूलों से इसे अधिवासित कर धूपित कर लें। इस शुद्ध चूर्ण की मात्रा 12 तोला है।

अथवा—इसे केवल शर्करा (या गुड़) के घोल में भिगोकर सुखा लेने से भी इसकी शुद्धि हो जाती है।

(1) अतिसार पर—मोथा में दीपन, पाचन गुण होने से अतिसार, आमातिसार, रक्तातिसार में इसका उपयोग बिल्वादि चूर्ण, वृद्ध गंगाधर चूर्ण, कर्पूर रस आदि अत्यन्त प्रसिद्ध प्रयोगों में किया गया है।

आमातिसार में—ताजे मोथा को अदरख के साथ पीसकर शहद के साथ सेवन कराते हैं। अथवा मोथा संख्या में 20 तक लेकर 3 गुने दूध और जल में पका, दूध मात्रा शेष रहने पर छानकर पिलाते हैं। सर्व प्रकार के अतिसार में इसका क्वाथ कर ठंडा हो जाने पर मधु मिलाकर पिलाने से लाभ होता है।

पित्तातिसार में—मोथा, इन्द्रजौ, चिरायता व रसौत का क्वाथ सेवन करावें—बं0से0। पीड़ा युक्त पित्तातिसार हो तो उक्त क्वाथ में इन्द्रजौ के स्थान में कुड़ा छाल मिला लें, तथा मधु मिला सेवन करावें। अथवा मोथा के चूर्ण को चावल का जल और मधु मिला सेवन करावें।

पित्त—कफज अतिसार में—मोथा, अतीस, मूर्वा, बच व इन्द्रजौ समभाग, क्वाथ कर मधु मिला सेवन करावें।

—भा0 प्र0

कफजातिसार में—मोथा और बेल गिरी का कल्क मधु के साथ देवें।

रक्तातिसार में—मोथा और इन्द्रजौ समभाग 4 तोला का कल्क बना, अष्टगुण (32 तोला) जल के साथ पकावें। 8 तोला शेष रहने पर ठण्डा हो जाने पर उसमें मधु 1 तोला मिला सेवन से लाभ होता है। इस योग को मुस्तकादि प्रमथ्या कहते हैं। —शारंगधर

बालकों के सर्वातिसार (विशेषतः आमातिसार) पर—मोथा, अतीस, सोंठ, सुगन्ध वाला, व इन्द्रजौ समभाग लेकर क्वाथ सिद्ध कर बालक को प्रातः पिलावें। यदि बालक स्तन्यपायी हो तो केवल माता को पिलावें। यदि स्तन्य और अन्न दोनों का सेवन करने वाला हो तो माता और बालक दोनों को यह क्वाथ पिलाना चाहिए। —भै0 र0

(2) बाल रोग पर बाल चातुर्भद्र—मोथा, छोटी पीपल, अतीस और काकड़ासिंगी समभाग महीन चूर्ण कर लें। मात्रा

2 से 8 रत्ती तक शहद के साथ दिन में 3–4 बार यथावश्यक देने से बालकों का ज्वर, अतिसार, कास, एवं वमन में विशेष लाभ होता है।

उक्त योग में धमासा (अथवा अडूसा) मिलाकर मधु से चटाने से बालकों की 5 प्रकार की खांसी दूर होती है। बालकों की दाह वमन और ज्वर पर–मोथा , पित्तपापड़ा, खस, सुगन्ध वाला व पद्माक समभाग मिश्रित 2 तोला जौकुट कर रात को 12 तोले जल में मिट्टी के पात्र में भिगो, प्रातः छानकर 2–3 बार पिलावें।

शोथ पर–मोथा, पेठे के बीज, देवदारु व इन्द्र जौ समभाग मिश्रित चूर्ण को पानी में पीस लेप करें। –यो0 र0

(3) ग्रहणी विकार पर–विशेषतः मंदाग्नि एवं आमदोष युक्त ग्रहणी में–मोथा, सोंठ, अतीस व गिलोय का क्वाथ सेवन कराते हैं यदि केवल आमदोष पाचन की ही आवश्यकता हो तो उक्त योग में गिलोय न मिलावें। ग्रहणी रोग में हितकारी पाठादि चूर्ण, नागरादि चूर्ण, भूनिम्बादि चूर्ण आदि योगों में मोथा प्रयुक्त होता है। सर्व दोषज ग्रहणी पर मोथा, अतीस, बेलगिरी व इन्द्रजौ समभाग, महीन चूर्ण कर 2 से 4 माशा की मात्रा में शहद से सेवन करें। –बं0 से0

बालकों के ग्रहणी विकार में यह योग अति लाभदायक है।

(4) ज्वरों पर–आमज्वर की दशा में–मोथा और पित्तपापड़ा इनका क्वाथ या शीतकषाय पीने से दोषों का पाचन होकर लाभ होता है। –ग0 नि0

अथवा–मोथा, सोंठ व चिरायता समभाग का क्वाथ कफ, वात, आम तथा ज्वर को दूर करता है, यह पाचन है। –भै0 र0

वात ज्वर में–मोथा, गिलोय, व चिरायता का क्वाथ देते हैं।

पित्त ज्वर में पाचनार्थ–मोथा, कुटकी व इन्द्रजौ का क्वाथ मधु मिलाकर देते हैं तथा ज्वर की शान्ति के लिये मोथा, कायफल, इन्द्रजौ, पाठा व कुटकी का क्वाथ शर्करायुक्त देवें। पित्तजन्य चित्त भ्रम, ज्वर, दाह, वमन एवं मंथर ज्वर में–मोथा, पित्तपापड़ा, मुलैठी व मुनक्का समभाग का अष्टमांश क्वाथ सिद्धकर मधु मिलाकर सेवन करावें। –यो0 र0

कफ ज्वर में–मोथा, धमासा और सौंठ समभाग का क्वाथ बना पीने एवं पथ्य पालन करने से तीव्र कफज्वर नष्ट होता है। वृ0 नि0 र0। अथवा–मोथा, इन्द्रजौ, त्रिफला, कुटकी व फालसा के फल समभाग का क्वाथ सेवन करावें। –भै0 र0

वात पित्त ज्वर में–मोथा, पित्तपापड़ा, नीलोफर, चिरायता, खस व लालचन्दन मिश्रित चूर्ण 2 तोला का क्वाथ सिद्ध कर खांड मिला कर सेवन करने से निश्चय ही यह ज्वर नष्ट हो जाता है– भै0 र0। अथवा मोथा, अमलतास, खस, हल्दी, देवदारू, पटोल, नीमछाल व मुलैठी का क्वाथ सेवन करावें। –ग0 नि0

वातकफज्वर में–प्रारम्भ में आमपाचनार्थ–मोथा, चिरायता व सौंठ के क्वाथ का सेवन करावें। आमपाचन में दुर्लक्ष्य हो जाने से रोगी के इस ज्वर में अरूचि, वमन, मुखशोषादि लक्षणों की प्रबलता हो तो मोथा, पित्तपापड़ा, गिलोय, सोंठ और धमासा के क्वाथ का सेवन करावें–भै0 र0। अथवा–मोथा, गिलोय, सोंठ, अडूसा, पित्तपापड़ा, हरड़ व कटेली व धमासा का क्वाथ देवें–हा0 सं0। यदि इस ज्वर में कास, श्वास, हिक्कादि विकार हों तो दार्व्यादि क्वाथ (इसमें भी मोथा पड़ता है।) की योजना मधु के साथ करें।

पित्त कफ ज्वर में–यदि कफ प्रबल हो तो मोथा, गिलोय और चिरायता का क्वाथ देवें। पित्त की अधिकता हो तो उक्त क्वाथ में पाठा नीलोफर व नेत्रवाला मिला लें

सन्निपात ज्वर में–सामान्य त्रिदोषजज्वर हो तो मोथा, त्रिकुटा, त्रिफला, कुटकी, पटोल, नीमछाल, अडूसा, गिलोय, चिरायता व धमासा का क्वाथ सेवन करावें।

पित्तोल्वण सन्निपात हो तो मुस्तादिगण (सुश्रुत सू0 स्थान) लाभदायक है। या

न्युमोनिया सन्निपात हो तो मोथा, पद्माक, पित्तपापड़ा, चन्दन, चमेली, सतावर व मुलैठी का क्वाथ सेवन कराने से मुख से आता हुए रक्त व सन्निपात (निमोनिया) में लाभ होता है। –भा0 भै0 र0

रुग्दाह सन्निपात में–मोथा, लालचन्दन, सोंठ, सुगंधवाला, खस व पित्तपापड़ा समभाग का क्वाथ बनाकर ठण्डा कर पिलावें। –यो0 र0

नोट–ज्वरों पर पीने के लिये षडंगपानीय योग विशिष्ट योगों में देखें।

विषमज्वर में सामान्य विषमज्वर हो तो मोथा, आमला, गिलोय, सोंठ व छोटी कटेरी का क्वाथ मधु 6 मासा और पिप्पली चूर्ण 1 माशा मिलाकर सेवन करावें– भै0 र0। सततज्वर हो तो मोथा, आमला व गिलोय का क्वाथ देवें। चातुर्थिक विषमज्वर हो तो मोथा, पाठा व हरड़ का क्वाथ सेवन करावें। जीर्णज्वर के कई प्रयोगों में मोथा लिया जाता है।

(5) विसर्प पर–मोथा, नीम की छाल और पटोल का क्वाथ सेवन करने से हर प्रकार का विषर्प नष्ट होता है। यो0 र0। कुष्ठ पर मुस्तादि चूर्ण का योग चरक चि0 अ0 7 में देखें।

(6) कृमि पर–मोथा, मूषाकर्णी (चूहाकानी), त्रिफला, सहेंजना की छाल व देवदारू का क्वाथ, पीपली और वायविडंग का चूर्ण मिलाकर पीने से दोनों मार्गों (मुख व गुदा) की ओर जाने वाले कृमि एवं उनसे उत्पन्न विकार दूर हो जाते हैं।

(7) रक्तपित्त पर– मोथा, इन्द्रजौ, मुलैठी व मैनफल के बीज समभाग का क्वाथ सिद्ध कर, ठण्डा हो जाने पर उसमें मधु और दूध मिला पीने से वमन होकर, विशेषतः अधोगत रक्तपित्त शमन हो जाता है। –बं० सं०

अथवा–मोथा, सिंघाड़ा, मुनक्का, धान की खील, खजूर व गेरू समभाग, चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का चूर्ण कर शेष द्रव्यों को सिलपर पीस, सब एकत्र मिला, शहद के साथ चटाने से एक, दो या तीनों दोषों के रक्तपित्त नष्ट होते है। –ग० नि०

(8) वातरक्त पर–मोथा, आमला (वाग्भट में आमला के स्थान में मुनक्का है) और हल्दी का क्वाथ ठंडाकर शहद मिला कुछ दिन सेवन से कफयुक्त वातरक्त दूर होता है। –भा० प्र०

(9) क्षयकास पर–मोथा, पिप्पली मुनक्का और बड़ी कटेरी के सुपक्व फल समभाग (इनका चूर्ण) मिश्रित कर घृत व मधु के साथ चटाने से लाभ होता है। –भै० र०

(10) शूल में आमरस के पाचनार्थ–मौथा, बच, कुटकी, हरड़ और मूर्वामूल का मिश्रित चूर्ण (मात्रा 16 रत्ती तक) गो मूत्र के साथ पिलावें। –भै० र०

(11) प्रमेह व मूत्राघात पर–मोथा, त्रिफला हल्दी, देवदारू, मूर्वामूल, इन्द्रायण मूल व लोध का चूर्ण मिलित 2 तोला पाकार्थ जल 32 तोला शेष 8 तोला। यह क्वाथ सर्व प्रकार के प्रमेह एवं मूत्राघात या मूत्रकृच्छ्र रोग में हितकर है। –हा० सं०

(12) विष (कृत्रिम) पर–मोथा की जड़ को पीसकर थोड़े घृत में मिला, चावलों के जल के साथ पीने से अति दारूण कृत्रिम, विष (गर विष) नष्ट हो जाता है। –भा० भै० र०

(13) अपस्मार पर–इसके क्षुप की जड़ (उत्तर दिशा को गई हुई) पुष्य नक्षत्र में लाकर, जटामांसी के साथ पीसकर समानवर्ण वाली सवत्सा गौ के दुग्ध में मिला कर पिलाने से लाभ होता है।–यो० र०। मुस्ताधवर्ति का योग च० चि० अ० 11 में देखें।

(14) मुख दौर्गन्ध्य पर–मोथा, एलुवा, मुलेठी, कूठ, धनिया व इलायची छोटी समभाग महीन चूर्ण कर पानी के साथ पीस कर गोलियाँ बना लें। गोली मुख में रखने से मुख की स्वाभाविक दुर्गन्ध भी नष्ट हो जाती है फिर मद्य, लहसन आदि की गन्ध की तो वात ही क्या है।–ग० नि०

(15) दन्तविकार पर–मोथा, हरड़, त्रिकुट तथा वायविडंग का चूर्ण 1–1 भाग और नीम पत्र 2 भाग सब को गोमूत्र में पीसकर गोलियां बना छायाशुष्क कर लें। 1–1 गोली मुख में रखकर रात्रि में शयन करें। इससे हिलते हुए दांत दृढ़ हो जाते हैं। हिलते हुए दांतों के लिए इससे उत्तम कोई भी औषधि नहीं है। –वं० से०

(16) अर्धावभेदक (आधाशीशी) पर पत्र प्रयोग– मोथा के ताजे पत्तों को हाथों में मसलकर दृढ़गुटिका सी बना, रोगी को दीवाल के सहारे बिठाल, मस्तक के जिस ओर पीड़ा हो उस ओर की नासिका के ऊपर की भों में जो बड़ी शिरा है, उस पर उस गुटिका को रख, हाथ के अंगूठे से जोर से दबा दें। पश्चात् उसे दही भात खिलाकर दो घण्टे के लिये सुला दें। इस प्रकार दो दिन करें। –व० गु०

(17) गर्भाशय संकोचार्थ–सद्यः प्रसूता स्त्री को मोथा का चूर्ण या फाण्ट देने से गर्भाशय संकुचित होकर दूषित रक्त बाहर निकल जाता है। गर्भाशय शुद्ध होता है।

(18) वमन पर–कफ जन्य वमन में मोथा, वायविडंग व सोंठ का चूर्ण अथवा मोथा और काकड़ासिंगी का चूर्ण मधु के साथ लेने से लाभ होता है।

त्रिदोषज वमन में प्रयुक्त होने वाले एलादिचूर्ण में इसे डालते हैं। अरुचि में–मोथा और आंवला का कवल धारण कराते हैं।

नोट–मात्रा–चूर्ण 1 से 3 माशा (या 6 माशा तक) स्वरस 1–2 तो०। फाण्ट के लिये ½ से 1 तोला तक। क्वाथ 5 से 10 तोला तक।

इसकी अत्यधिक मात्रा रक्त विकार पैदा करती है, तथा कंठ और फुफ्फुसों के लिये हानिकर है। हानि निवारणार्थ–शर्करा, सौंफ या अनीसूं देते हैं।

विशिष्ट योग :

(1) मुस्तादिवटी–मोथा 8 तोला तथा पिप्पली, कपूर व हींग 4–4 तोला इनके मिश्रित चूर्ण को कपूर के जल से घोटकर 1 या 2 रत्ती की गोलियां बनालें। इसके प्रयोग से अतीसार, अजीर्ण, उग्रविसूचिका (हैजा), अरुचि अग्निमांद्य, दारूणग्रहणी विकार एवं पांचों प्रकार के कास नष्ट होते हैं। –भै० र०

(2) मुस्तादि षडंग पानीय–मोथा, पित्तपापड़ा, सुगन्धवाला (या नेत्र वाला), लाल चन्दन, खस, और सोंठ (भाव प्रकाश में सोंठ के स्थान पर सौंफ दिया गया है) समभाग, जौकुट कर इसमें से 1 तो० लेकर 124 तो० जल भरे मिट्टी के पात्र में पकावें। आधा जल शेष रहने पर ठण्डा कर छान लें।

ज्वरी को प्यास लगने पर यह जल थोड़ा–थोड़ा पीने को दें। इससे प्यास, दाह व ज्वर का वेग कम होता है। सर्व प्रकार के ज्वर में इसे दे सकते हैं। यह उत्तम पाचन है। –च० सं० चि० अ० 3

नोट–वाग्भट में सोंठ के स्थान पर पदमाख है। किन्तु ज्वर प्रायः आमाशय की दुष्टि से उत्पन्न होता है अतः सोंठ विशेष हितकर है।

(3) मुस्तकारिष्ट–मोथा 10 सेर जौकुट का 1 मन 12 सेर जल में पकावें। 12 सेर शेष रहने पर, छान कर संधान

पात्र में भर उसमें गुड़ 15 सेर, धायपुष्प 13 छटांक, तथा अजवायन, सोंठ, कालीमिर्च, लौंग, मैंथी, चित्रक मूल व काला जीरा 7–7 तो0 चूर्ण कर मिला 1 माशा तक सुरक्षित रखें। फिर छान कर शीशियों में भर लें। 1 से 4 तो0 की मात्रा में सेवन से अजीर्ण, मंदाग्नि, हैजा और भयंकर संग्रहणी दूर होती है। —भै0 र0

आसवारिष्ट के शेष प्रयोग हमारे बृहदासवारिष्ट संग्रह में देखें।

(4) मुस्तकादि पाक—(ग्रहणी अतिसारादि नाशक)—मोथा 32 तो0, नया धनिया, त्रिफला, भांगरा, लौंग, छोटी इलायची, तेजपात, नागकेशर, छार छरीला, त्रिकुट, दोनों जीरा, अजवायन, कायफल, सुगंधवाला, धाय के फूल, कूठ,, जावित्री, जायफल, दालचीनी, सौंफ, अजमोद, पान, हाऊबेर, बच, कपूर, जटामांसी, इन्द्रजौ और बंसलोचन, 1–1 तो0 सबका महीन चूर्ण कर सबसे दो गुनी खांड़ की चाशनी में मिला पाक जमा दें या मोदक बना लें।

½ से 1 तो0 की मात्रा में लेने से अग्नि प्रदीप्त होगी। सरक्तग्रहणी, अतीसार, ज्वर, पांडु, हलीमक, कृमि रक्तपित्त अर्श आदि रोगों का नाश होता है।

नोट—पाक व मोदक के उत्तमोत्तम प्रयोग हमारे बृहत्पाक संग्रह, ग्रंथ में देखें।

चर्म रोग नाशक मुस्ताद्युद्वर्तन का प्रयोग वाग्भट में देखे। नोशदारू सादा नामक प्रयोग (दीपक, पाचक व अतीसार नाशक) यूनानी ग्रन्थों में देखें।

नागार्जुनी—देखो दुद्धि बड़ी। नागी कपूर—देखो ककरोंधा में।